R.N.I.No.-CHHHIN16015 डाक पंजीयन संख्या–छ.ग./बस्तर/28/2015–17

सुदूर आदिवासी क्षेत्र की लोक संस्कृति एवं आधुनिक साहित्य को समर्पित त्रैमासिक

संपादकीय कार्यालयः–

'बस्तर पाति'

सन्मति इलेक्ट्रीकल्स, सन्मति गली, दुर्गा चौक के पास,

जगदलपुर, जिला–बस्तर, छ.ग. पिन–494001

मो.–09425507942 ईमेल–paati.bastar@gmail.com

बस्तर पाति

जल्दी ही इंटरनेट पर–www.paati.bastar.com

मूल्य पच्चीस रूपये मात्र•अंक–5+6+7,जून–फरवरी 2015–16

प्रकाशक एवं संपादक
सनत कुमार जैन
विशिष्ट संपादक
श्री बी. एन. आर. नायडू
सह संपादक
श्रीमती उषा अग्रवाल 'पारस'
शशांक श्रीधर
महेन्द्र कुमार जैन
शब्दांकन
अनूप जंगम/सनत जैन
मुख पृष्ठ
श्री नरसिंह महांती
रेखांकन
श्रीमती कमलेश चौरसिया
प्रभारी उत्तरप्रदेश
शिशिर द्विवेदी
प्रभारी छत्तीसगढ़
भरत कुमार गंगादित्य

सहयोग राशि:–साधारण अंकः पच्चीस रूपये एकवर्षीयः एक सौ रूपये मात्र, पंचवर्षीयः पांच सौ रूपये मात्र, संस्थाओं एवं ग्रंथालयों के लिएः एक हजार रूपये मात्र। सारे भुगतान मनीआर्डर व ड्राफ्ट ***सनत कुमार जैन*** के नाम पर संपादकीय कार्यालय के पते पर भेजें या स्टेट बैंक ऑफ इंडिया के खाता क्रमांक **10456297588** में भी बैंक कमीशन 50 रूपये जोड़कर सीधे जमा कर सकते हैं।

प्रकाशक, मुद्रक, संपादक, स्वामी सनत कुमार जैन द्वारा सन्मति प्रिन्टर्स, सन्मति इलेक्ट्रीकल्स, सन्मति गली, दुर्गा चौक के पास, जगदलपुर से मुद्रित एवं जगदलपुर के लिए प्रकाशित

सभी रचनाकारों से विनम्र अनुरोध है कि वे अपनी रचनाएं कृतिदेव 14 नंबर फोण्ट में एवं एक्सेल, वर्ड या पेजमेकर में ईमेल से ही भेजने का कष्ट करें जिससे हमारे और आपके समय एवं पैसों की बचत हो। रचना में अपनी फोटो, पूरा पता, मोबाइल नंबर एवं ईमेल आईडी अवश्य लिखें। के प्रत्येक पेज में नाम एवं पता भी लिखें।

पत्रिका में प्रकाशित रचनाओं के विचारों से बस्तर पाति, संपादक मंडल या संपादक का सहमत होना अनिवार्य नहीं है। रचनाकारों द्वारा मौलिकता संबंधी लिखित/मौखिक वचन दिया गया है। संपादन एवं संचालन पूर्णतया अवैतनिक और अव्यवसायिक। समस्त विवाद जगदलपुर न्यायालय के अंतर्गत।

पाठकों से रूबरू/2
पाठकों की चौपाल/5
बहस/कला में नकल, प्रेरणा और गुलामी/7
बहस/कहानी में संवाद/8
बहस/भावना और भावुकता/10
व्यंग्किाएं/अविनाश ब्यौहार/12
मेहरून्निसा परवेज़ विशेष
बस्तर के साहित्य मरू की गुप्त सरस्वती/बी. एन. आर. नायडू/13
कथाकार का सफर/बी.एन.आर.नायडू/14
मेहरून्निसा परवेज़ के कृतित्व में नायिकाएं/बी. एन. आर. नायडू/15
मेहरून्निसा परवेज़ का सम्पादकीय साहित्य/डॉ. लक्ष्मण सहाय/17
एक मुलाकात/महावीर अग्रवाल/21
लघुकथा/कृष्णचंद्र महादेविया/23
काव्य/श्रीमती शैल दुबे/23
कहानी/कोरजा/मेहरून्निसा परवेज़/24
आलेख/पासंग/अनीता सक्सेना/28
बढ़ते कदम/हेमंत बघेल/31
लघुकथाएं/श्रीमती रजनी साहू/31
रंगीला बस्तर/शिवशंकर कुटारे/32
काव्य/सुनीता दमयंती/32
काव्य/रामनारायन मीना/33
रंगीला बस्तर/आलेख/बलबीरसिंह कच्छ/34
लघुकथा/शिशिर द्विवेदी/36
विशेष रपट/37
कहानी/जंगल कथा/लोकबाबू/39
समीक्षा/मरूथल का सहयात्री/46
हाइकु आलेख/डॉ. सतीशराज पुष्करणा/47
विश्वधरोहर/उसने कहा था/चंद्रधर शर्मा गुलेरी/51
आलेख/उसने कहा था के बहाने/57
नक्कारखाने की तूती/59
पत्रिका मिली/60
साहित्यिक उठापटक/61
कविता कैसे बदले तेरा रूप/63
फेसबुक वॉल से/63

लघुकथा

योग्यता

'सर मैं वरिष्ठ पत्रकार श्री जे. के. सिंग का भाई हूं। उन्होंने मुझे आपके पास कलाकार के रिक्त पद के सिलसिले में भेजा है।

सर मैं कला के सभी क्षेत्रों में दखल रखता हूं। सर ये कुछ बड़ी साहित्यिक पत्रिकाओं के अंक हैं, जिनमें मेरी रचनाएं छपी हैं। सर ये फोटोग्राफी का डिप्लोमा और उससे संबंधित पुरस्कार और सर ये रही मेरी संगीत विशारद की डिग्री और सर ये मेरी मूर्तिकला के नमूने और सर ये.....'

'देखो मिस्टर तुम्हारे इस ताम–झाम से हमें कोई मतलब नहीं है। तुम्हारी सबसे बड़ी योग्यता यह हैं कि तुम उस वरिष्ठ पत्रकार जे. के. सिंग के भाई हो, जिसके पास हमारी कई सारी पोल है। तुम अपना आवेदन दो और निकल लो।'

आलोक कुमार सातपुते

832–सेक्टर–05 हाउसिंग बोर्ड कॉलोनी, सड्डू, रायपुर–492014 मो.–9827406575

मैं बहुत ज्यादा कनफ्यूज हूं समझ के भी समझ नहीं पा रहा हूं। जो जरूरी है उसे करना बेवकूफी है और जो गैर जरूरी है उसे करना मजबूरी है। ढाई साल का मेरा बच्चा स्कूल की दुनिया में कदम रखने वाला है और मैं निर्णय लेने में असमर्थ हूं कि उसे हिन्दी माध्यम से पढ़ाऊं या अंग्रेजी माध्यम से। किसी शोधकार्य की तरह लगातार लगा हूं इस विषय में सोचने को। तमाम पहलू दिमाग में घुमड़ रहे हैं, कभी कोई पहलू अच्छा लगता है तो कभी कोई। कानवेन्ट के भोंदू–तोंदू सरीका बनाया जाये जिन्हें कालेज पहुंचने के बाद भी यह समझने में दिक्कत होती है कि ढाई सौ रूपया, पौने तीन सौ रूपया और साढ़े तीन सौ रूपया क्या होता है। घड़ी में पौन, सवा, ढाई, साढ़े तीन–चार बजते हैं, जो आम जीवन में बहुत ज्यादा प्रचलित हैं। या फिर किसी मुहावरे पर भावार्थ की जगह शब्दार्थ ढूंढने लगते हैं। माना कि इनके बिना भी जीवन चलाना बहुत आसान हैं परन्तु गमले के पौधे से कितनी उम्मीद की जा सकती है। जो जमीन से जुड़ा ही नहीं वह कैसे जी सकता है ? ऐसे लोगों की सोच में ठीक वैसा ही अनदेखा प्रभाव नहीं पड़ता है, जो गणित विषय पढ़ने वाले बच्चों में आ जाता है; गणित वाले बच्चे गणित पढ़ते हुए गोल ओरियन्टेड हो जाते हैं उन्हें अपने जीवन में चलताऊ तरीके से जीने की तरह उद्देश्यपरक जीना अच्छा लगने लगता है क्योंकि गणित को हल चाहिए, किसी भी तरह। क्योंकि गणित पढ़ते हुए लगातार हल ढूंढते हुए प्रश्न का सटीक उत्तर पाना जीवनशैली में बदल जाता है।

लगातार 16–17 साल वह भी एकदम साफ स्लेट पर पेन्सील गड़ा–गड़ाकर लिखना, बच्चे को नयी प्रजाति में नहीं बदल देता है। जो खाता रोटी–सब्जी, इडली–दोसा, चटनी–समोसा है और पढ़ता, सोचता ब्रेड–बटर, सैण्डविच–पिज्जा है। जिन्हें जीना इस देश में है, इस मिट्टी में है और बताया जाता इंग्लैड–अमेरिका का पर्यावरण, वहां के रीति रिवाज! जब हमें यहीं जीना, खाना और मरना है तो क्यों न हम यहीं की बातें ज्यादा अच्छे से सीखें। बच्चों का ब्रेनवाश किया जाता है शिक्षा के माध्यम से। उन्हें जड़ों से काटा जा रहा है शिक्षा के माध्यम से। विश्व के इतिहास की जानकारी के माध्यम से भारतीय इतिहास और संस्कृति को दोयम दर्जे में ढकेला जा रहा है। हिन्दी माध्यम की पुस्तकों में धोती–कुर्ता–तिलक, पैजामे–टोपी के साथ भारतीय जीवन दिखता है तो वहीं अंग्रेजी माध्यम की पुस्तकों में टाई–कोट, स्कर्ट–जीन्स में टेबल कुर्सी पर बैठा स्वप्नील जीवन होता है।

जरा विचार करें, अंग्रेजी माध्यम का पढ़ा बच्चा कृषि विस्तार अधिकारी बनता है तो क्या होगा। क्या वह दोमट मिट्टी, काली मिट्टी आदि की विशेषता जान पायेगा ? भारतीय परिवेश के अनुसार योजनायें गढ़ पायेगा ? क्या उसके दिमाग में भरा विदेशी परिवेश इस मिट्टी के लिए आप ही आप कुछ सोच सकने के काबील रहने देगा ?

अगर वह शिक्षाकर्मी बन गया तो क्या होगा ? वह बच्चों को नैसर्गिक ज्ञान दे पायेगा ? हिन्दी के बच्चों को दिग्भ्रमित नहीं करेगा, क्योंकि आज की स्थिति में सरकारी स्कूल में गरीबों के बच्चे ही पढ़ते हैं, क्या वे विदेशी परिवेश के बारे में जान सुनकर कुण्ठाग्रस्त होकर हीन भावना से नहीं भरेंगे ?, क्या वे अपने को दोयम दर्जे का नहीं मान बैठेंगे ? बड़ी विचित्र कश्मकश है। नौकरी पाना है इसलिए पढ़ रहे हैं और डाक्टर इंजीनियर बनना है, इसलिए अंग्रेजी माध्यम में पढ़ रहे हैं। विदेश जाना है इसलिए मशीन बनकर पढ़ रहे हैं। क्या कोई बता सकता है कि कितने प्रतिशत पढ़े लिखे लोग विदेश में रहने/नौकरी करने चले गये ? या फिर कितने प्रतिशत लोग ऐसी नौकरी कर रहे हैं जिसमें अंग्रेजी जान कर ही काम किया जा सकता है ? और जहां हिन्दी जरूरी है वहां किसने जानबूझकर अंग्रेजी को लागू कर रखा है, उसका कारण क्या है ? न्याय क्षेत्र को ही लीजिए, लगभग सौ प्रतिशत केस आम जनता के हैं जिन्हें हिन्दी ही समझ आती है पर कानून लिखा अंग्रेजी में है। सरकार बनी है जनता से और जनता की बातें अंग्रेजी में होती हैं और लिखी जाती भी हैं अंग्रेजी में। ये कैसा गड़बड़झाला है। कुछ गिने चुने लोग जनता पर राज करने के लिए एक दोयम की अनुभूति वाला माहौल तैयार रखते हैं जिसमें वे विशिष्ट हों!

ऐसे में अनावश्यक रूप से अंग्रेजी में शिक्षा देना तो जनता के साथ शासक वर्ग की दगाबाजी है, बेइमानी है। जब शून्य से भी कम प्रतिशत के लोग ही अंग्रेजी शिक्षा से लाभान्वित हैं तो फिर सभी को उसमें ढकेल देना कहां तक उचित है! जिन्हें बाहर जाना है या कुछ ऐसा करना है जिसमें अंग्रेजी ही जरूरी है तो वे कर लें एक दो साल की विशेष शिक्षा, किसने रोका है। पर उन शून्य से भी कम प्रतिशत के लोगों के एवज में दुनिया को उठाकर एक तरफ से दूसरी तरफ करने का क्या औचित्य ?

अंग्रेजी के प्रति ऐसा माहौल तैयार करने में सरकार क्यों लगी है ? अंग्रेजी दासता की ये मेहनत हम सभी के लिए मुसीबत है ये जानते हुए भी हम मजबूर हैं अंग्रेजी माध्यम में पढ़ने के लिए। क्यों ?

क्योंकि समाज सबकुछ जानते हुए भी अपने को नहीं बदल रहा है। आसपास रहने वाले हर व्यक्ति अपने बच्चों अंग्रेजी माध्यम के स्कूल में भर्ती कर रखे है, यदि मेरा बच्चा हिन्दी माध्यम में पढ़ने लगे तो वे हमें चीथकर रख देंगे। सुबह से शाम तक इस पर ही चर्चा होगी। हमारा बच्चा तो

हेय दृष्टि से देखा जायेगा ही और हम भी हेय हो जायेंगे। बच्चा बड़ा होकर हीनभावना से भर जायेगा। वो कितना जानकार है अन्य दुनियावी बातों का उसे भुलाकर लोग मात्र अंग्रेजी माध्यम की ही बातें करेंगे।

कितना विचित्र माहौल है हिन्दी माध्यम के स्कूल के समस्त कर्मचारी अपने बच्चों को अंग्रेजी माध्यम में पढ़ाते हैं। हिन्दी टायपिस्ट का बच्चा अंग्रेजी माध्यम में पढ़ता है। हिन्दी के प्रोफेसर का बच्चा अंग्रेजी माध्यम में पढ़ता है। सरकारी कालेज के समस्त कर्मचारी अंग्रेजी माध्यम से पढ़ाते हैं। पुलिस विभाग जहां अंग्रेजी का लेना–देना नहीं वहां के बच्चे अंग्रेजी माध्यम से पढ़ते हैं। जबकि ये सारे हिन्दी की खा रहे हैं। अन्य व्यापारी वर्ग, मजदूर वर्ग देखा देखी दौड़ रहा है। व्यापारी वर्ग तो शुरू से ही धन से सबकुछ खरीद सकने की सोच पाले हुए है। जब से अफसरी जनता पर हावी हो गई है तब से जनता में भी शासन प्रशासन में घुसने की होड़ जागी है। अफसर वर्ग अपने आपको सुरक्षित रखने के लिए कानून अंग्रेजी में ही लिखे रहने देना चाहता है। जब हिन्दी में ही सबकुछ होना है तो फिर हिन्दी के प्रति इतना बैर क्यों ? क्यों न हम हिन्दी माध्यम के कान्वेंट शैली के स्कूल खोलें ! क्यों न हम धोती–कुर्ता–पैजामा को ही जोड़कर स्कूल चलाने का प्रयास न करें! ये हिन्दी को सम्मान देना नहीं है बल्कि अपने भीतर के इंसान को मरने से बचाना है। अंग्रेजी से सबकुछ पा लेने का झूठा अहसास बहुत सी ऐसी कमियां हमारे भीतर घुसाता जाता है जो प्रत्यक्ष रूप से नहीं दिखती हैं परन्तु पीछे बहुत कुछ छूटता जाता है। मात्र अंग्रेजी में शिक्षा पाते हुए बच्चा अपनी सोच में आप ही आप वृद्धाश्रम, अनाथाश्रम के लिए सहज स्वीकृति दे देता है। ये बातें उसे प्राकृतिक महसूस होती हैं। हिन्दी माध्यम की शिक्षा चूंकि मातृभाषा में होती हैं इसलिए गुणाभाग, लाभहानि जोड़घटाना, शब्दज्ञान, आसपास की जानकारी, नाते रिश्तेदारी यूं ही सीख जाता है। दर्शन, ज्ञान, संस्कार, संस्कृति, मौसम, पर्यावरण यूं ही जान जाता हैं। मां–बाप, पड़ोसी आदि यूं ही बात करते हुए बहुत कुछ सीखा देते हैं जिन्हें बच्चा स्कूल में ''बोझ'' समझ पढ़ता है क्योंकि वह जीता हिन्दी में है और पढ़ता अंग्रेजी में हैं। अच्छा मजे की बात यह है जितनी मेहनत और ऊर्जा वह खर्च करता है सोलह–सत्रह सालों में वह शून्य हो जाती है। जब उसे वास्तविक जीवन जीना पड़ता है तो वह शिक्षा बेमकसद साबित होती है।

आखिर सरकार ये क्यों नहीं समझाती है जनता को कि हिन्दी माध्यम से भी बैंक की नौकरी मिलती है और अच्छे से की जा सकती है। या जितने भी सरकारी आफिस हैं वहां हिन्दी में ही काम होता है अंग्रेजी का तनाव न लें। आज की स्थिति में सरकारी स्कूल गरीबों के बच्चों को पढ़ाने के अड्डे हैं वे मजबूरी में वहां पढ़ रहे हैं। ये साबित भी हो चुका है। अभी जब सरकार ने निजी स्कूलों में 20 प्रतिशत गरीब बच्चों को भर्ती करने का आदेश जारी किया तो निजी स्कूलों में भीड़ लग गई। यह है देश का माहौल! इस भ्रम के महौल को क्यों तैयार किया जा रहा है। यह सोचना जरूरी है या नहीं ? ये नीतियां सरकार विदेशी कर्जे में दबे होने के कारण मानती हैं। इस नीति से जो अंग्रेजों के द्वारा लादी गयी हैं, उनके यहां दोयम दर्जे के काम करने वाले आसानी से मिल जाते हैं। अपने यहां हमेशा सस्ते मजदूर और सेवादारों की आपूर्ती बनाये रखने के लिए वे साम, दाम, दण्ड, भेद की नीतियां अपनाते हैं। किसी भी व्यक्ति को उसकी जड़ से उखाड़ने का महत्वपूर्ण तरीका भाषा और संस्कार से काट देना होता है। ये जो अमेरिका अन्य देशों में लोकतंत्रीय स्वतंत्रता और मानवतावाद का परचम लेकर दौड़ता है, वहां ऐसा कहां हैं ? हमारे देश में सरकारें बदलने से विदेशी कूटनीति बदल जाती है और अमेरिका में जो नीति पचास साल पहले लागू थी वह आज भी लागू है। उन्हीं नीतियों का अनुसरण हो रहा है चाहे सीधे दिखाते–बताते हुए या छिपते–छिपाते हुए। कितने आश्चर्य की बात है कि हम आज देश में भारत और इंडिया की दोहरी नीति अपनाकर समस्त योजनायें चला रहे हैं। एक ओर आईटीआई की तकनीकी शिक्षा हिन्दी में देते हैं क्योंकि गरीब ही ये शिक्षा ग्रहण करता हैं, आखिरकार उसे मजदूर ही बनना है। वहीं उनसे काम कराने वाले यानी इंजीनियर को अंग्रेजी में। विदेशों में यही इंजीनियर मजदूरी करने जाते हैं।

सरकार और अफसर यदि भारतीय जनता के इतने ही रहनुमा हैं तो सीधे अंग्रेजी माध्यम की शिक्षा के ही स्कूल खोल दें। हिन्दी में शिक्षा बंद ही कर दें। पढ़ायें न सभी को अंग्रेजी में। पर ऐसा कभी नहीं होगा। आने वाले पचास साल तक तो बिल्कुल नहीं। क्योंकि वर्तमान पीढ़ी इस शिक्षा को ही हथियार बनाकर गुलामी प्रथा जीवित रखेगी। जिनके हाथ में सत्ता है, प्रशासन है वे लोग इस व्यवस्था को ग्लूकोज लगने तक जीवित रखेंगे। देखा जा सकता है आज कि प्रत्येक नेता चाहे वह छुटभैया ही क्यों न हो उसके बच्चे अंग्रेजी माध्यम में ही पढ़ेंगे। वैसे ही प्रशासनिक अधिकारियों के बच्चे नियम से अंग्रेजी माध्यम में पढ़ेंगे। और यही लोग हिन्दी माध्यम को जीवित रखने की वकालत भी करेंगे। हिन्दी के लेखक हिन्दी के शिक्षक भी अंग्रेजी के हिमायती होंगे और हिन्दी की आवश्यकता का, हिन्दी के मर जाने से नुकसान का, हिन्दी के तड़फड़ाने का आलेख, कहानी, कविता आदि साहित्यकर्म करके एक ऐसा धुंध पैदा कर देते हैं कि जानाबूझा माहौल भी

अनजाना हो जाता है। गरीबी की परिभाषा भूख से गढ़ी जाती है जिससे कि वह पेट भर जाने तक संतुष्ट हो जाये। मुफ्त में शिक्षा मिल रही है वह चुपचाप लेकर उनका सेवक बना रहे। संपन्नवर्ग हिन्दी को गरीबों और मजदूरों की भाषा बनाये रखना चाहता है जिससे उसके जीवन की सुख–सुविधाओं की निर्बाध पूर्ति होती रहे। बुद्धिजीवी वर्ग अपनी बुद्धि की झूठी वाहवाही से ग्रसित होकर कोलाज़ बनाने में लगा है। हिन्दी के बुद्धिजीवी हिन्दी भाषा में अन्य भाषा के शब्दों को घुसाकर भाषा को समृद्ध बनाने का दावा ठोकते हैं तो उन्हीं के बीच कुछ बुद्धिजीवी दूसरी भाषा के हिन्दी शब्द के लिए ऐसा मज़ा गढ़ते हैं कि उनका बुद्धिजीवी होना ही संदिग्ध हो जाता है। ट्रेन के लिए लौहपथगामिनी आदि। (उस जमाने के लिए उचित था, भले ही आज हंसी का मुद्दा है।) वैसे ही आधुनिक विज्ञान में रोमन से हिन्दी लिखने की विधा को क्रांति समझने/समझाने वालों की फौज आ गई है। वे दावा करते हैं कि इससे हिन्दी का अंतर्राष्ट्रीयकरण हुआ है। कैसा दावा है यह भाषा के शब्द गायब हो जायेंगे, भाषा की लिखने की लिपि गायब हो जायेगी तो भाषा, बोली में परिवर्तित नहीं हो जायेगी ? हम क्यों हर ज्ञान–विज्ञान को अंग्रेजी आधार पर ही आगे बढ़ने की सीढ़ी मान लेते हैं ? क्यों नहीं हम हिन्दी आधार का उपयोग करते हैं ? हम क्यों मुफ्त की खाने वाले बने हुए हैं ? क्यों परजीवी बने हुए हैं ? हिन्दुस्तान में रहना है तो हम क्यों नहीं अपने देश के लिए हिन्दी में इंजीनियरिंग, मेडिकल, कानून, अकाउंट की पढ़ाई कराना चाहते हैं ? क्यों इन्हें हिन्दी से दूर रखना चाहते है ? हिन्दुस्तान की आबोहवा के अनुकूल ज्ञान का उपयोग क्यों नहीं करते ? हमने अपने खाता बही में लिखने की विधि उनके लिए बदल ली ? हमने अपने वास्तुशास्त्र को उनके अनुकूल बना लिया। क्यों ? हमने अपने आयुर्वेद को मारकर एलोपैथी को सर पर बैठा लिया। क्यों ? उसके चमत्कार के पीछे आयुर्वेद का विकास रोक दिया और बल्कि ज्ञान का लोप कर दिया। हमने अपने शाकाहार की शक्ति को बेकार मान लिया। मांसाहार अपना लिया। क्या ये सब हिन्दी को मारने के कारण नहीं हैं ? एलोपेथी हिन्दी में नहीं पढ़ाई जा सकती है उसके मूल अंग्रेजी शब्द वही रहें ग्रामर हिन्दी में रहे, तो क्या बिगड़ जाता है ? क्या ऐसा होने से हिन्दी के जानकर छोटे–मोटे डाक्टर भी शोधकार्य नहीं कर पाते ? क्या अंग्रेजी में ही टैली लिखा जा सकता है ? जब हिन्दी को खिचड़ी बनाया जा रहा है तो अंग्रेजी को क्यों नहीं बनाया जा सकता है ?

क्या बुद्धिजीवी नहीं समझते कि जेहन में बोया एक बीज भी कभी न कभी उगता ही है। मात्र हिन्दी नाम की जगह अंग्रेजी नाम रख लेने से भी आज धर्म बदल जाते हैं। एक पीढ़ी के बूढ़े होने का धैर्य रखा जाता है तो फिर हम क्यों पीछे हैं ? हम जैसे ही भाषा की बात करते हैं तो पिछड़े हो जाते हैं या चौथी सदी की सोच वाले हो जाते है। भाषा के साथ ही साथ अपने संस्कारों की केंचुल छोड़ दी, जैसे हमने छोड़ी है।

हमें अपने जीवन में हिन्दी को पिछड़ने से रोकना होगा। समस्त अंग्रेजी कार्यों को हिन्दी में बदलकर करें चाहे अंग्रेजी का फार्म हो हिन्दी में ही भरें। अपने बिलबुक, रसीद, आवेदन हिन्दी में ही लिखे। कान्वेंट शैली के स्कूल हो जहां कपड़े पहनकर खूब खर्च करवाकर पढाया जाता हो।

शायद तब भी बात न बने। क्यों ? क्योंकि हमने तो अपनी ठसन का कारण ही अंग्रेजी मान लिया है। हम अंग्रेजी में बोलने बतियाने से ही महान हो जाते हैं तो फिर बाहरी उपाय किस काम के।

हिन्दी माध्यम के स्कूल कान्वेंट की तर्ज पर क्यों नहीं खोले जाते ? क्यों हिन्दी कहते ही चुटिया धारी, धोती पैजामे वाली शिक्षा का चित्र खींचा जाता है। जैसे ही हिन्दी पत्रिका निकाली विद्वान वर्ग आंखे चौड़ी करके और चश्मा चढ़ाकर गलतियां ढूंढ़ने बैठ जाता है। भले ही अपने जीवन में अंग्रेजी जीवन शैली अपना चुका होगा परन्तु भाषा की शान के लिए डण्डा, बल्लम लेकर तैयार खड़ा रहेगा। भाषायी शुचिता उसकी जिन्दगी की सांस्कृतिक गंदगी से ज्यादा महत्वपूर्ण हो गयी है। ऐसे ही जुगाडू प्रवृति के विद्ववानों की वजह से ही हिन्दी दोयम दर्जे में समाती जा रही है। अंग्रेजी अपने लचीलेपन से व्याप्त होती जा रही है। अंग्रेजी का पैरोकार अंग्रेजी से मात्र मतलब साधने की अपेक्षा रखता हुआ आगे बढ़ जाता है। हिन्दी वाले हिन्दी को मरते देख सकते है पर उसमें लचीलापन किसी भी सूरत में नहीं चाहते।

आपने अपने बच्चे को किस माध्यम के स्कूल में भर्ती कराया, जरा बताएंगे। शायद कुछ लोगों के लिए अपने विचारों को संतुलित करने में मददगार साबित हो। ●

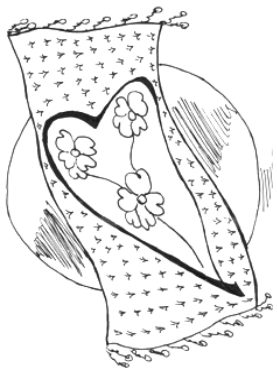

पाठकों की चौपाल

प्रिय पाठक, नमस्कार,
कुछ बातें 'बस्तर पाति' के नियमित कॉलम के संबंध में करना चाहूंगा। 'बहस' कॉलम पाठकों और पत्रिका के बीच संवाद स्थापित करने के उद्देश्य से ही रखा गया है। ऐसा नहीं है कि उस कॉलम में लिखी समस्त बातों से आप सहमत हों। असहमति और सहमति से ही ज्ञान का विस्तार होता है। इसलिए आप अपने विचारों से असहमति एवं सहमति हमसे और अन्य पाठकों से साझा करें।
ठीक इसी तरह नक्कारखाने की तूती कॉलम है जिसमें उन विषयों पर लगातार लिखा जा रहा है जिससे हम रोज दो–चार होते हैं पर फंसे वहीं होते हैं। इन विषयों में एकदम सामान्य परेशानियों का प्रस्तुतिकरण नहीं होता बल्कि वैसी बातें होती हैं जहां हम उन परेशानियों को नियति या न बदल सकने वाला नियम मान लेते हैं।
आप से अनुरोध है कि आप अपने विचार जरूर भेजें। पाठकों से रूबरू के माध्यम से आपके विचार साझा होंगे। **संपादक**

प्रिय सनत,
बस्तर पाति के अंक–4 के प्रकाशित होने पर बधाई एवं शुभकामनाएं। उत्तरोत्तर इसी तरह अपने काम में सफल होते रहें यही कामना है।
कहानी प्रतियोगिता के बहाने सहज–सरल कहानियां पढ़ने को मिलीं। कहानियों को प्रथम, द्वितीय एवं तृतीय स्थान देने की सम्पादक/सम्पादक मण्डल की अपनी रूपरेखा हो सकती है लेकिन मुझे जो कहानी सबसे अधिक पसंद आई वो है–कुमार शर्मा 'अनिल' की 'पुरस्कार'। सधी हुई भाषा शैली, कथा वस्तु, विषय की यथार्थपरक विवेचना और कहानी में कौतुहल का वातावरण। मेरी ओर से बधाई।
'पाठकों से रूबरू' यानी सम्पादकीय बहुत अच्छा लगा। इसमें जिस सकारात्मकता, मौलिकता और सहजता की बात कही गई है इन सब चीजों की आज वास्तव में बहुत अधिक ज़रूरत है। सम्पादक के विचारों पर सभी लेखक और पाठकों को ग़ौर फ़रमाना चाहिए। नसीम आलम 'नारवी' जी की ग़ज़लें उम्दा हैं। हर शेर में मानीख़ेज बात है और ये बड़ी बात है। नारवी जी बधाई के पात्र हैं। उनकी ग़ज़लों में उनके शाइर का तेवर दिखाई देता है–मसलन–
तक़ाज़ा वक़्त का है तर्क कर ये नर्म–खी
फ़तह क़रीब है तेवर बदल कर देख ज़रा।
नक्कारखाने की तूती एक अच्छे कॉलम की शुरूआत है। इसे लगातार चलाते रहना चाहिए। शरदचंद्र गौड़ जी को अपने व्यंग्य उपन्यास 'मन्नू भण्डारी जाएगा मंगल पर' के लिए बधाई।
खुदेजा ख़ान, अशोका पार्क के सामने, धरमपुरा, जगदलपुर

आदरणीय खुदेजा जी, नमस्कार
आपका लंबा–चौड़ा पत्र और उस पत्र में बस्तर पाति की समीक्षा पाकर मन आनंदित हो गया। आप बस्तर क्षेत्र की वो साहित्यकार हैं जो अपने लेखन–यथा–ग़ज़ल, कविता, नज़्म, कहानी, लघुकथा, आलेख और समीक्षा में सिद्वहस्त होने के साथ–साथ वर्तमान सामाजिक, राजनैतिक, साहित्यिक समस्त घटनाओं के प्रति सजग–सचेत हैं। आपके विचारों में जो सुलझापन है वह अन्य साहित्यकारों में दुर्लभ है। आपके द्वारा अनेक पुस्तकों की समीक्षा भी की गई है। अगले अंकों में उनका लगातार रसास्वादन किया जावेगा।
बड़े ही दुख के साथ बताना पड़ रहा है कि सितम्बर माह में नसीम आलम 'नारवी' जी का निधन हो गया। **–सनत जैन**

सनत भैया जी, नमस्कार,
ज्ञात हो कि मैं सकुशल हूं भगवान आपको एवं पूरे 'बस्तर पाति' परिवार को सकुशल रखे। मैं आपकी पत्रिका के सभी अंक पढ़ चुका हूं। मैंने साहित्यिक किताबों का अध्ययन अपनी महाविद्यालयीन शिक्षा के समय कुछ समय निकाल कर शहडोल म.प्र. के वाचनालयों में किया था जो आज तक जारी है। मैं अभी सशस्त्र सीमाबल में प्रधान आरक्षक के पद पर तैनात हूं, अध्ययन आज भी जारी है। मेरी साहित्य क्षेत्र में रूचि महाविद्यालय के गुरूओं के योगदान और उनके विचारों से हुई। हमारा मध्यप्रदेश (बाद में छत्तीसगढ़ भी) हिन्दी भाषी इलाका है अतः हमें हिन्दी में लिखे–छपे साहित्य – कथा, कहानी,व्याख्यान आदि को पढ़ने का मौका मिला जो कि आदत में बदल गया। आपके द्वारा प्रकाशित 'बस्तर पाति' हम पाठकों के लिए सारगर्भित पत्रिका है। यह देश के एकदम पिछड़े इलाके से प्रकाशित हो रही है; हिन्दी भाषा एवं साहित्य की रक्षा के लिए आपको बारम्बार धन्यवाद एवं आभार। मेरी नौकरी की खोज में सन् 2005 में जगदलपुर आना हुआ था। वृंदावन कालोनी में स्व. जनकप्रसाद वर्मा (अभियंता, लोक निर्माण विभाग) के निवास में रूकना हुआ था। उस वक्त वर्मा जी जीवित थे, उनकी पत्नी जो कि शहर के बालिका विद्यालय में शिक्षिका हैं और उनके सुपुत्र जो कि वर्तमान में रायगढ़ में अभियंता हैं, उनके द्वारा दिया गया आदर–सत्कार आज भी दिल और दिमाग में जिन्दा है। वर्मा जी की पत्नी का मां की तरह वात्सल्य भाव था।15 दिन के प्रवास में राजमहल, उसके पीछे स्थित बड़ा सा तालाब, बस्तर की रथयात्रा, दशहरा महोत्सव के समय दंतेश्वरी माई की पालकी का आना, इन्द्रावती नदी, मुर्गा लड़ाई का स्थान, चौराहे बाजार, रेल्वे स्टेशन आदि का घूमना फिरना हुआ था। चारो ओर आदिवासियों द्वारा प्रवीरचंद्र भंजदेव की जय–जयकारा लगाना आश्चर्य पैदा करता है। स्व. राजा आज भी आदिवासी जनों के हृदय में निवास करते हैं। अतः आपसे निवेदन है कि आप स्व. राजा जी के जीवनकाल की कहानियां, संस्मरण को अपनी पत्रिका में जरूर स्थान देंगे। उनके साहसिक व्यक्तित्व का वर्णन जरूर लिखें ताकि पत्रिका के माध्यम से ज्यादा लोग उनके बारे में जान सकें। वैसे मैंने राजाजी पर लिखी किताब को भी पढ़ा था। बड़ा ही लोमहर्षक वर्णन है। भैया मैं जरौदा, तर्रा, रायपुर छ.ग. का निवासी हूं वर्तमान में भारत–भूटान सीमा पर अरूणाचल प्रदेश में तैनात हूं। मेरी और आपकी ससुराल भाटापारा है तो हमेशा प्रेम–व्यवहार बना रहेगा। शुभकामनाओं के साथ आपका सैनिक भाई और छत्तीसगढ़िया।
सुनील कुमार शर्मा, (स.सी.ब.) नामश्रृंग, तवांग, अरूणाचल प्रदेश पिन–790104 मो–9977805981

आदरणीय सुनील जी, जयहिन्द
सर्वप्रथम आपको सैल्यूट! आप और आप जैसे हर जवान की बदौलत भारत आज सुरक्षित है और विकास की ओर अग्रसर है। मुझे अपने आप पर नाज़ है कि मैं एक जवान के साथ सीधे तौर पर जुड़ा हूं। आप देशसेवा के साथ साहित्य के पाठक भी हैं इसका अर्थ यही है कि आप बहुत ही अच्छे इंसान हैं। मेरी एक सलाह है कि साहित्य पठन में रूचि है तो लेखन भी करें क्योंकि आप तो देश के उन स्थानों में आते–जाते हैं जहां आम तौर पर जाना कठिन होता है। आप अपने संस्मरण लिखें ज्यादा आसानी होगी। हम और हमारे

पाठक इसे रूचिपूर्वक पढ़ना चाहेंगे। आप जगदलपुर आये थे और अपनी यादों में जगदलपुर को बसा लिया है, आपके पत्र से मालूम होता है। हिन्दी भाषा और साहित्य का जितना भला साहित्यकार एवं संपादक–प्रकाशक करते हैं उससे कहीं ज्यादा तो पाठक पत्रिका/पुस्तक खरीदकर अपने आर्थिक एवं पत्राचार द्वारा नैतिक सहयोग से करते हैं। जिस प्रेम के साथ अपने लेखक /पाठक भाई का पत्र आता है प्रकाशन संबंधी सारी थकान उड़न–छू हो जाती है। अपना प्रयास सार्थक लगता है और भविष्य के लिए आत्मविश्वास का ख़जाना और बढ़ जाता है। **–सम्पादक**

आदरणीय संपादक महोदय, नमस्कार
आशा और कामना करता हूं कि आप कुशलता से हैं। श्रीमती सुमन शेखर, ठाकुरद्वारा, कांगड़ा से यह जानकर प्रसन्नता हुई कि 'बस्तर पाति' में मेरी रचनाएं प्रकाशित हुई हैं। तत्संबंधी अंक प्रेषित कराने का कष्ट करें। आभारी रहूंगा।

मनुस्वामी, 446–अहाता औलिया, मुजफफरनगर–251002

आदरणीय मनु जी, नमस्कार
आशा करता हूं कि आप को 'बस्तर पाति' का आपकी रचनाओं वाला अंक अब तक प्राप्त हो गया होगा। न हुआ हो तो पुनः प्रेषित करता हूं। **संपादक**

संपादक जी,
बस्तर पाति का अंक प्राप्त हुआ। धन्यवाद। प्रख्यात लेखक, कवि लाला जगदलपुरी को यह अंक समर्पित कर आपने एक बड़ा काम किया है। लालाजी का नाम तो बहुत सुना था–थोड़ा बहुत उन्हें पढ़ा भी था पर पहली बार उनके बारे में विस्तार से पढ़ने को मिला। छत्तीसगढ़ ने एक से एक लेखक, साहित्यकार, कलाकार, कवि देश को दिये हैं। छ.ग. के प्रगतिशील लेखक संघ के कई साहित्यकारों/कलाकारों से मेरा निकट का संबंध भी है। बस्तर की एक अलग ही सभ्यता व संस्कृति है, यह तो साल वनों का एक सुन्दर दीप है जहां लालाजी जैसे फक्कड़ साहित्यकारों ने एक नयी अलख जगाई है।
मनु स्वामी, कीर्ति श्रीवास्तव, सुमन शेखर, सुमय्या काशिफ़, चक्रधर शुक्ल, नज़्म सुभाष, कुष्ण मोहन 'अम्भोज', प्रो. भगवानदास जैन, सुरेश विश्वकर्मा 'चितेरा' की कविताएं बहुत अच्छी लगी। पत्रिका में विज्ञापन नहीं है, कैसे निकाल पाते हैं पत्रिका ? साहित्य के प्रति आपके समर्पण को सलाम करता हूं। छ.ग. के साहित्यकारों को एक माला में पिरोने का आप बहुत बड़ा कार्य कर रहे हैं।**–डॉ. राजेन्द्र पटोरिया, आजाद चौक, सदर, नागपुर–440001, मो.–9421779906**
आदरणीय राजेन्द्र जी, नमस्कार
आपने 'बस्तर पाति' का शुरू से ही उत्साहवर्धन किया है–धन्यवाद! वास्तव में लालाजी ने बस्तर के लोक साहित्य, भाषा एवं बोली के लिए जितना काम किया है उसके एवज में न तो उन्हें सम्मान मिला है न ही उनकी रचनाओं के संरक्षण की दिशा में कोई योजनाबद्व कार्य हो रहा है। बस्तर विश्वविद्यालय शुरू हुए अरसा बीत गया परन्तु वह भी लालाजी का सम्मान कर, अपना सम्मान नहीं कर पा रहा है। अगर लालाजी दिल्ली या भोपाल में होते तो आसमान पर होते।
पत्रिका प्रकाशन मेरे लिए व्यवसाय नहीं वरन साहित्य के प्रति आसक्ति है, इसलिए स्वयं के खर्चे से पत्रिका प्रकाशन हो रहा है। इस खर्चे में साहित्य समर्पित पाठक, लेखक अपना सहयोग पंचवर्षीय सदस्यता लेकर दे रहे हैं। और आप जैसे साहित्य के प्रति निष्ठावान लोग लगातार पत्र लिखकर मेरा नैतिक बल बनाये रखते हैं, मेरी ऊर्जा और बढ़ाते हैं। पुनः धन्यवाद।–**सनत जैन**
बहुत प्रिय भाई सनत, सप्रेम नमस्कार,
'बस्तर पाति' के अंक मुझे नियमित मिल रहे हैं। अंक–4 दो दिन पूर्व ही मिला। यह अच्छा लग रहा है कि आप स्थानीय रचनाकारों को बराबर स्थान दे रहे हैं। 'सूत्र' के जरिये अग्रज विजयसिंह यह काम करते रहे हैं, अब भी वे युवा व नवोदितों से संवादरत हैं। अच्छा है कि आप जैसे उत्साही साथी की उपस्थिति छत्तीसगढ़ साहित्यिक पत्रकारिता में बढ़ी है। 'बस्तर पाति' के अंकों में लाला जगदलपुरी पर एकाग्र अंक हम लोगों के लिए लालाजी को गहराई से जानने में मदद करता है। अन्य जो भी अंक अब तक आये हैं उनमें बस्तर की प्रतिभाओं को खोज–खोजकर प्रस्तुत करते आयें हैं। हां, पत्रिका की पृष्ठ सज्जा के प्रति कुछ उदासीनता है आप इसे बेहतर कर सकते हैं। सनत भाई! मैं अपनी रचनाएं भेजकर 'बस्तर पाति' में छपने का सुख भी चाहूंगा। शेष फिर।
रजत कृष्ण, संपादक, 'सर्वनाम', बागबाहरा, छ.ग. मो.–9755392532
आदरणीय रजत जी, नमस्कार
आपका पत्र पाकर मुझे कितनी खुशी हुई उसका वर्णन करना मुश्किल है। आप एक प्रेरक व्यक्तित्व हैं। आपके संपादन में निकलने वाली 'सर्वनाम' पत्रिका का मैं शुरू से ही प्रसंशक हूं। आप लोगों ने पत्रिका प्रकाशन के माध्यम से जो बीड़ा उठाया है उस जैसा ही मैं भी कुछ करना चाहता हूं। आपका आशीर्वाद मिलेगा तो मुझे खुशी होगी। आप अपनी रचनाएं अधिकार पूर्वक भेजिए, उत्कृष्ट रचनाएं प्रकाशित कर 'बस्तर पाति' का सम्मान ही बढ़ेगा। पुनः धन्यवाद।–**सनत जैन**
संपादक जी नमस्कार
आपके द्वारा प्रेषित 'बस्तर पाति' की प्रति प्राप्त हुई उत्तरोत्तर 'बस्तर पाति' सफलता के सोपान पर अग्रसर है। निःसंदेह यह पत्रिका छत्तीसगढ़ की एक पहचान बनती जा रही है। पत्रिका की सामग्री उच्चस्तरीय है। साहित्यिक पत्रिकाओं में इसे अच्छा प्रतिसाद मिल रहा है। बस्तर जैसे दूरस्थ जिले में उत्कृष्ट कोटि की साहित्यिक पत्रिका निकालना चुनौतीपूर्ण कार्य है। पूरे देश के साहित्यकार और पाठक इस पत्रिका से जुड़ते जा रहे हैं। साहित्य के विद्यार्थियों के लिए भी यह पत्रिका मार्गदर्शिका है। आपको कोटिशः बधाई। मेरी इच्छा है और निवेदन है कि बस्तर की पत्रिका होने के कारण इसमें अगर आवरण के अतिरिक्त हल्बी, गोंडी आदि बोली में एक रचना आये तो उत्तम होगा। आंचलिकता को प्राथमिकता देंगे ताकि आदिवासी संस्कृति, भाषा, बोली की जानकारी पूरे देशवासियों को हो। जयहिन्द।**–डॉ. शैल चंद्रा, प्राचार्य, शा.कन्या हाई स्कूल, सांकरा, जिला–धमतरी छ.ग. मो.–9977834645**
आदरणीय शैल जी, सादर नमन,
आपका बहुत–बहुत धन्यवाद! आपने 'बस्तर पाति' का बारीक विश्लेषण कर उसके वर्तमान और भविष्य की व्याख्या की। सम्पादक, लेखक एवं पाठकों की तिकड़ी ही किसी भी पत्रिका को स्तरीय बनाती है। जब पत्रिका से जुड़ा व्यक्ति अपनी कीमती सलाह प्रेषित करता है तो पत्रिका का भविष्य उज्जवल हो जाता है। लंबे वक्त तक चलने के लिए सभी का वैचारिक, नैतिक, आर्थिक सहयोग आवश्यक होता है। आपके बताये अनुसार 'बस्तर पाति' में हम भी चाहते हैं कि आंचलिकता हो, इसके लिए उस तरह का लेखन करने वाले मौलिक लोगों को ढूंढने का कार्य लगातार चल रहा है। पिछले अंकों में रचनाएं भी हैं। **सम्पादक**

कला में नकल, प्रेरणा एवं गुलामी

एक अच्छी कलात्मक रचना दुनियाभर के रचनाकारों, कलाकारों को प्रेरित करती है। दुनिया के महाकाव्यों ने किसी न किसी रूप में आज तक हमें प्रेरित किया है। आज के सवालों के जवाब हम उनमें ढूंढते हैं, नयी रचनाएं उनमें से लाते हैं। यह आश्चर्य नहीं है। आश्चर्य तो तब होता है जब हू–ब–हू नकल की जाए। जी हां, आप टीवी चैनलों के डांस–ड्रामा देख लीजिए–आधुनिक माइकल जैक्शनों की फोटो कापियां थोक के भाव में मिलेंगी। मजा ये कि ये सभी, खासकर अपने देश में अपने क्षेत्र के माने हुए 'सेलबिट्री' हैं। इन्होंने अपना स्कूल खोल रखा है जहां हजारों नकलची तैयार किये जाते हैं। ये बात कला–साहित्य के लगभग हर पहलू में देखा जा सकता है।

आखिर ऐसा क्यों ? इन्हें कौन मान्यता देता है ? इनकी लोकप्रियता का राज क्या है ?

क्या किसी भी भौंड़ी नकल कर कोई कलाकार वाकई कलाकार–रचयिता कहलाने का अधिकारी हो सकता है ?

सर पे मिस्टर जैक्शनी टोपी पहनकर, कोट के बटन खोल, कोट के पहलू को पीछे झटकते हुए आप फ्लोर पे मून डांस करते हैं। दर्शक सीटियां बजाते हैं। वाह! आपने हू–ब–हू जैक्शन साहब की नकल की।

बॉलीवुड शुरू से ही हॉलीवुड से प्रेरित रहा है। यह ठीक है, मगर ज्यादातर लगभग हर स्टोरी, घटनाएं, सीन कुछ तोड़–मरोड़कर यहां प्रस्तुत कर दिये जाते हैं। राजकपूर चैपलिन साहब से प्रेरित थे, (चैपलिन ने दुनिया के कलाकारों को प्रेरित किया है–आज भी कर रहे हैं।), दिलीप कुमार मेथड स्कूल से प्रभावित तो देव साहब सीधे ग्रेगरी पैक की स्टाइल ही कापी कर ली। देव साहब का स्टाइल उड़ाना वाजिब–सा है क्योंकि उनकी प्रेयसी सुरैया ग्रेगरी पैक की जबरदस्त फैन थी। अतः आपने ज्यादा सुविधाजनक ये समझा कि असली न सही, नकली 'पैक' ही प्रेयसी के सामने प्रस्तुत किया जाए। यह प्रेम में भावुक समावेश लाजवाब है। इस नकली पैक को सुरैया ने (उनकी प्रेमिका) कितना पसंद किया, पता नहीं, पर हिन्दी सिनेमा के चहेतों को आज भी देव साहब अपने स्टाइल के कारण रोमांचित करते हैं। पता नहीं तब मीडिया/टीवी के आज के युग में जब हमारे दर्शक असली हीरो को देखते तो देव साहब कितने चल पाते–कहना मुश्किल है। पर इसमें दो राय नहीं कि आज भी अपने देश में असल से ज्यादा नकल चलता है। नकली वीडियो, नकली कैसेट्स, नकली नोट, नकली साहित्यकार, नकली भगवान तो गली–गली मिल जायेंगे जहां के आश्रमों में दाखिला लेते आपको बैकुण्ठ दर्शन होने लगेगा। नकली कुकुरमुत्ता संस्थाएं जहां मैनेजमेंट के फंडे सिखाए जाते हैं–नकली विचारक जो देश को, समाज को तेरहवीं सदी में ले जाने की कसम खाए बैठे हैं, नकली शिक्षा–जैसे अमेरिका ने साहित्य और इतिहास से अपना बजट जैसे ही कम किया हमने भी हू–ब–हू अपने देश में वही किया। ठीक माइकल जैक्शन की फोटोकापी जैसा!

चारो ओर देखो तो प्रतीत होता है अपने देश की प्रतिभा बस फोटो–कॉपी की प्रतियां हैं वह भी खराब!

एक और तरह की नकल की बात कहना चाहूंगा, वह है कला की दुनिया में पाइरेसी। दुनिया भर में पुरानी कलाएं, मूर्तियां, डाक टिकट, पेंटिंग्स, क्रॉफ्ट इत्यादि की भारी मांग है। दुनिया के रईस अकूत धन खर्च कर इनका संग्रह करते हैं। शौक लाजवाब है। मगर कहा जाता है इसमें नकली बाजार(अर्थात् पाइरेटेड आर्ट) खरबों डॉलर का है। यह सिर्फ अनुमानित है। इन महान चोरों (नकलचियों, पाइरेटरों जो कहें।) का काम होता है दुनिया की रेअर हो चुकी कला, विशेषकर पेंटिंग्स, मूर्तियों की हू–ब–हू नकल करना, इनमें केमिकल का प्रयोग कर पुराने जैसा करना और विश्वप्रसिद्ध नीलामियों में बेच देना। एम.एफ. हुसैन और रज़ा साहब की पेंटिंग्स इसी तरह नकलचियों ने ना सिर्फ नकल की वरन् प्रसिद्ध गैलरियों से बेच भी डाला।

उक्त उदाहरण तो सीधा–सीधा चोरी और ठगी (एक किस्म की) से है–हां, इस नकल में और तमाम प्रक्रिया में जिस गज़ब की प्रतिभा का इस्तेमाल होता है–उसकी हम सिर्फ कल्पना कर सकते हैं।

पर हमारा मामला सिर्फ नकल या चोरी तक सतही नहीं है। बात यहीं तक होती तो चल जाता। (भारत में सब चलता है।) बात संस्कृति और यों कहें कि सीधा–सीधा ये अप–संस्कृति के उदाहरण हैं। हमने अपनी जमीन छोड़ी, हमने अपनी परम्परा से प्राप्त चीजों को नकारा, इस ओर देखा ही नहीं। हमारे वेद और आयुर्वेद की व्याख्या अमेरिकन कर रहे हैं।

क्या हम प्रबुद्ध हुए हैं ?

क्या हम अब भी अंधकार युग में नहीं जी रहे हैं ? (वैचारिक/सांस्कृतिक रूप से)

दिलीप कुमार, राजकपूर या मुंशी प्रेमचंद (रूसी लेखकों से) प्रेरित हुए–मगर अपनी जमीन नहीं छोड़ी। यूरोप ने तकनीकी विकास किया, हम उनकी ओर देखते रहे–उनका प्रभाव स्वाभाविक है–मगर नकल ?उधर वैचारिक क्रांति होती है–इधर हम बिना लाग–लपेट के, बिना विचारे उसे हथिया लेते हैं। जैसे अपने बाप का माल हो।

बात नृत्य या संगीत की होती तो क्षम्य थी मगर नकल वह भी हमारे बौद्धिकों द्वारा विचारकों और दार्शनिकों द्वारा!

साहित्यकारों द्वारा....! उन्हें जिन्हें अपनी जमीन व समय व परम्परा के हिसाब से एक पृथक वैचारिक भूमि रखनी थी, उन्होंने हू–ब–हू यहां भी 'मून–डांस' किया। जैसे इनके पास अपना कुछ है ही नहीं!

पर कुछ खांटी लोग भी हुए जिन्होंने अपनी जमीन नहीं छोड़ी। उस्ताद बिस्मिल्लाह खान ने शहनाई को ऊंचाई दी, सितार और संतूर और तबला को भी एक मुकाम दिया गया। इसी तरह तमाम क्षेत्रों में इक्के–दुक्के विलक्षण अपने काम में लगे रहे, अपने–अपने क्षेत्र में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते। अफसोस इस बात का है कि जब–तक यूरोप या अमेरिका ने 'सर्टिफिकेट' नहीं दिया हमें अपने पर, अपनेपन पर अपने होने पर यकीन नहीं आया।

क्या ये बौद्धिकों की पहचान है ?

क्या हम आज भी वैचारिक रूप से परतंत्र नहीं ?

यहां सर अरविंदो और गुरू टैगोर के विचारों से सहमत होना पड़ता है–उनके लिए भौतिक आजादी ज्यादा मायने नहीं रखती थी। असल है सांस्कृतिक उत्थान, आत्मा की स्वतंत्रता। हम जिस तरह नकल में झूम रहे हैं वह हमारी बद्ध आत्मा की निशानी है–मजा ये कि इसका अहसास हमें नहीं।

कला व रचनाएं तो हमें मुक्त करती हैं–हमें गुलामी नहीं सीखाती, जब प्रकृति की हर शै विविध है, ना प्रोटोटाइप ना स्टेरियोटाइप ना कार्बन–कॉपी या फोटोकॉपी, फिर हमारे रचयिता इस मूल सिद्धांत को क्यों नहीं देख पा रहे हैं ?

बात जब हिन्दी भाषा हिन्दी साहित्य–संस्कृति की आती है और जिस तरह हमने ही इसे दयनीय, हाशिए पर ढकेला है, वह क्षोभजनक तो है ही हमारी 'अस्मिता' को ही चुनौती देती प्रतीत होती है। हम कहां हैं–

–हिंगलिश बोलता एक दिल्लीवासी या पटनावासी जो सिर्फ अमेरिका के सपने देखता है ?

–वह अपनी भाषा को सिर्फ और सिर्फ एक 'संवाद'(कम्यूनिकेट) करने की 'चीज' समझता है। उसे ना अपनी संस्कृति पर गर्व है ना अपनी कला–भाषा पर ?

–क्या हम वास्तव में अपनी जमीन पर खड़े हैं ? आज की युवा पीढ़ी सांसे तो यहां से ले रही है मगर उसका दिल धड़कता है न्यूयार्क या लंदन में!

शायद–यही हम हैं।

–फिर हिन्दी की किताबें क्यों बिकें,

–फिर हिन्दी के कलाकार–रचनाकार क्यों न हाशिए पर हों–जिस आवाम या पाठक या श्रोताओं का लगाव ना अपनी जमीन से है ना आसमान से–भला ऐसे समाज–देश में ऐसे ही लोगों द्वारा अंग्रेजी के लेखकों को करोड़ों रायल्टी दी जाती है तो आश्चर्य क्या! ●

कहानी में संवाद

कहानी का महत्वपूर्ण कलात्मक पहलू है–कहानी में प्रयुक्त संवाद! कथा लेखकों और पाठकों के लिए यह नयी चीज नहीं है। हम यों ही संवाद लिख या पढ़ लेते हैं–लेकिन उसकी अहमियत से शायद अनभिज्ञ! हिन्दी कहानी में लेखक (ज्यादातर लेखक) संवाद लेखन के प्रति कामचलाऊ रवैया अपनाते हैं, जबकि सच ये है कि संवाद आपकी कथा–रचना की जान हो सकते हैं। कहानी के प्रारंभ, मध्य या अंत में महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकते हैं।

प्रश्न है–एक कहानी में संवाद या बात–चीत की भूमिका क्या हो सकती है, कहां तक उनका प्रयोग सार्थक हो सकता है।

यों तो, जैसा कि अकसर यहां कहा गया है कि–ये सारी बातें रचनाकार पर निर्भर है, वहीं किसी तत्व का कितना, कहां और किस तरह का प्रयोग/उपयोग करना है–जानता है। मसलन बगैर संवादों के भी, कहानी रची गयी है–और अच्छी कहानियां लिखी गयी हैं। फिर भी कथा–रचना में संवादों की भूमिका उल्लेखनीय होती हैं–इससे इनकार नहीं किया जा सकता।

कहानी में परिवेश, पात्र व वातावरण महत्वपूर्ण होता है। यह जितना सजीव होगा, कहानी उतनी विश्वसनीय होगी। आपकी कहानी चाहे जितनी फेंटेसी भरी हो, यह पाठकों को विश्वास दिलाए और पाठकों का विश्वास जीतने के लिए एक सजीव, सशक्त वातावरण, पात्र–पात्रों की रचना अहम है। जैसे कोई पात्र आम के बगीचे में बैठकर रोटी–दाल खा रहा है, लुंगी और सर पे पगड़ी बांधे है यदि उसकी जुबान से ये संवाद निकले–''वाऊ! इट्स अमेजिंग...,नाइस लंच.... ।'' –ऐसा वाक्य पूरी तरह विरोधाभाषी है, पाठकों की अपेक्षा के प्रतिकूल चौंकानेवाला, अविश्वसनीय! पाठकों में कौतुक तो जगाएगा फिर लेखक महोदय को तर्कसम्मत तरीके से बताना पड़ेगा कि उनका यह पात्र ऐसी अभिव्यक्ति क्यों कर रहा है। क्या लेखक का मंतव्य हास्य पैदा करना है ? चौंकाना ?

जबकि उक्त परिवेश में भोजन का आनंद लेते हुए उस पात्र द्वारा यह कहलवाना ज्यादा यथार्थ के करीब होगा–''वाह! आज के रोटी में गजबे मिठास है।''

उसी तरह एक दूसरा पात्र मुंह में पहला कौर ले जाते ही थूक दिया–''औरत के हाथ नमक और तिजोरी पर एके समान रहना चाहिए जहां हाथ खोलना हो चुटकी से काम लेवे, हमारी घरवाली तो दोनों हाथ से बहावे... ।''

उक्त संवाद पात्रों की अलग–अलग मनोदशा, स्थितियों का चित्रण करते हैं। कहने की आवश्यकता नहीं कि एक जीवंत कहानी जीवंत पात्रों व परिवेश से ही रची जा सकती

है। संवादों की भूमिका असंदिग्ध है।

संवाद कैसे हों ? लम्बे, छोटे, चुटीले, प्रवचननुमा। इसका कोई फार्मूला नहीं हो सकता और होना भी नहीं चाहिए। यह सब रचनाकार पर निर्भर करता है कि वह संवादों के मार्फत क्या और किस बात की अभिव्यक्ति चाहता है। फिर भी, लेखक स्वयं देखे कि ये संवाद विश्वसनीय हों,परिवेश को जीवंत करने वाले, पात्र और परिस्थिति के अनुकूल। थोड़ी सी सावधानी आपकी कहानी को उम्दा बना सकती है।

एक संवाद कहानी में विविध भूमिका रचता है। ऊपर सार व्यक्त किया गया है, मगर जो सबसे अहम् और कलात्मक अभिव्यक्ति संवादों की हो सकती है वह है घर्षण, संघर्ष या विवाद की स्थिति का चित्रण! चाहे आंतरिक हो या बाह्य। एकालाप प्रधान कहानी में भी संवाद आते–जाते रहते हैं। देखा जाए तो संवाद वे ही नहीं जो 'इनवर्टेट कोमा' में बंद किये गये होते हैं। विरोधी बातें ही संवाद होती हैं। और बगैर विरोध, घर्षण या संघर्ष के कहानी कला अधूरी रहेगी। गौर फरमाएं–

'क्यों भाई! आम खा रहे हो!'

'हां भाई! तुम भी साथ दो न!'

'क्यों नहीं, आम देखते ही मेरे मुंह में पानी आ जाता है. ..।'

'खाओ, खाओ! यहां कोई कमी नहीं, जी भर कर खाओ।'

ऊपर के संवाद में कोई झगड़ा, विवाद या चरित्रगत विशेषता, संघर्ष कुछ भी उजागर नहीं हो रहा। लेकिन ये बात–चीत है, संवाद है, पाठकों को यही ज्ञान मिलता है कि दो दोस्त हैं और दोनों को आम पसंद है। यहां आम की कोई कमी नहीं।

अब गौर फरमाएं–

'भाई वाह! खूब आम खा रहे हो।'

'तो क्या मैं तुझे इमली चूसता नजर आ रहा हूं, भगवान ने बड़ी–बड़ी आंखें दी हैं, कभी तो इन पर यकीन कर लिया करो.... ।'

'आंखों पे तो पूरा यकीन है दोस्त, पर मेरी जुबान को नहीं।'

'क्यों, मीठे आम का एक कतरा इन्हें चटाओ, वाह! क्या मिठास है....आह... ।'

'मुबारक हो भाईजान, आप ही को यह मिठास मिले!'

'चल जा। जिस जुबान को हड्डी, मांस प्यारी हो उस कमीनी जुबान को यह प्यारी चीज क्या पसंद आएगी... ।'

'खबरदार! तू क्या जाने मुर्गे की टांग का मजा! तू खाक समझ पायेगा...ये घास और पत्ते चबाने वाली जुबान...खाक समझ पाएगा सेंकी कबाब का मजा... ।'

'चल हट...मुबारक हो तुझे। कातिल कहीं के... ।'

'क्या कहा.....कातिल...?'

'हां, और क्या....प्राणी ही तो हैं बेचारे, खून पीते हो, हड्डी चूसते हो... ।'

'बस, बस... । तुम्हारे घास–पत्तों में मालूम है कितने कीड़े और बैक्टीरिया होते हैं कातिल मैं या तू ... ।'

'अब बस कर यार! मैं बहस के मूड में नहीं, साला आम का स्वाद ही जाता रहा...कुछ लोगे ? मेरे यहां गोड़ी का रस या मछली का शोरबा मिलने से रहा... ।'

'उठ कर चला जाऊं... ।'

'तेरी मर्जी...मैं तो मजबूर हूं...जो खाता हूं वही तो खिलाऊंगा. .. ।'

'इतना शिष्टाचार तो मैं जानता हूं, तू मेरे घर आता और मुझे मटन बिरयानी खाते देखता तो मजाल जो दरवाजे तक आ जाए....जनाब को तब भूत नजर आता...उल्टे पांव भागते. ... ।'

ऊपर के संवाद में दो भिन्न स्वाभाव, रूचि या विचार वाले पात्रों के संवाद हैं। यहां असीमित संभावनाएं हैं।

हिन्दी कहानी में ज्यादातर विचारों को प्रेषित करने में संवादों का इस्तेमाल किया जाता है–जैसा कि बार–बार कहा गया है वे विचार एजेण्डाबद्ध तरीके से लिखे जाते हैं और रचना बेजान सी होती है। वे विचार पात्रों के मुंह से तो कहलवाए जाते हैं मगर मूल रूप से वे लेखक के किताबी ज्ञान होते हैं। यह उतना बुरा नहीं है–मुश्किल तब है जब दो पात्र एक ही विचार को सीधे रास्ते से गुजरते हुए एक खास निर्णय पर पहुंचना चाहते हों। यहां संघर्ष या विवाद के लिए कोई जगह नहीं। कहानियां क्यों न बेजान हो.... ।

एक और बात! कहानी या संवाद में लेखक तथ्यों, स्थिति का, विचार का चित्रण भर करे–किसी पक्ष की ओर झुकाव आखिरकार एक कमजोर रचना ही बनाएगी। कलात्मक कुशलता तो यही है कि विरोधाभाषी तस्वीरें खींच दी जाएं–पाठक पर थोपी न जाए। मांसाहार बुरा है तो इसकी बुराई का चित्रण कर तटस्थ रहें–प्रवचन देने से कहानी कला (या कैसा भी लेखन) कमजोर ही होगा। ऊपर के संवाद में शाकाहार या मांसाहार किसी का पक्ष नहीं लिया गया है।

मुलाहिजा फरमाएं–

आज का तापमान 44 डिग्री पार कर गया। उफ्फ! जी मचल गया है सापेक्ष आर्द्रता भी नब्बे प्रतिशत से कम न होगी। पत्ते तक हिल नहीं रहे हैं–हवा का मानों अस्तित्व ही नहीं। ना भीतर चैन ना बाहर! इस उमस भरी गर्मी ने तो जैसे अजगर बना दिया है–प्रतीत होता है सांस कहीं अटकी पड़ी है।

यह तस्वीर उमस भरी गर्मी का है–वर्णन है। इस वर्णन में उमस भरे जीवन को लक्षित कर खास–खास बिन्दुओं को दर्शाया गया है–जैसे तापमान, सापेक्ष आर्द्रता (डिग्री मापने की जरूरत नहीं थी।) गतिहीन पत्ते, मन की बेचैनी, अजगर सा आलस्य, अटकी सांसे।

इसे इस तरह व्यक्त करने पर विचार करें–

दीनदयाल जी अपनी गीली बनियान निकाल फेंके और लुंगी वहां तक उठा लिया जहां तक संभव हो सकता था। चौराहे के पुलिया पर जा बैठे, दो–चार मित्र पहले से मौजूद थे, लुंगी को पंखे की तरह हिलाते हुए बोले–'ओफ्फ ई गर्मी तो गांड़ मार के रख दिया है, न सोते आराम ना जागते...।'

दूसरा दृश्य देखें–

मास्टरनी जी लथ–पथ किसी तरह सीढ़ियों को पार कर अपने तीसरे मंजिलें पर स्थित मकान का दरवाजा खोली। धड़ाम! एक जोर की आवाज आई। आते ही वह सोफे पर पसर गई–'अरे ओ बाई! कहां मर गई , कूलर–पंखा सब ऑन कर...। मार डाला इस उमस ने...।'

उसी तरह गर्मी–उमस से परेशान पाण्डे जी का ये उद्‌गार है–'कूलर है, पंखा है मगर चैन नहीं। इतनी गर्मी तो हमारे गांव में भी नहीं पड़ी, तब ना बिजली थी ना बत्ती..., सब इंसान का पाप है....यह कुछ नहीं बस पाप की तपन है....हे भगवान...!'

उक्त संवादों (एकालाप के रूप में ही) से वातावरण और चरित्र दोनों की जानकारी पाठकों को मिलती है। संवाद से ही ज्ञात हो जाता है कि पात्र व परिवेश कहां के हैं–पात्र किस तरह का है, शहरी ग्रामीण, शिष्ट या भदेस। स्थान का भी बोध होता है–पूर्वी या मुम्बईया या बंगाली या और कुछ।

रचनाकार इन संभावनाओं को अपनी कहानी में मांग के अनुसार प्रयोग कर सकते हैं। ध्यान देने की बात ये है कि लेखक अपने पाठकों को किस तरह और कितना कथा के परिवेश, स्थिति, समय व स्थान इत्यादि से अवगत कराते हैं। और वह भी विश्वसनीयता से। ●

पाठकों एवं सदस्यों से निवेदन

कुछ तकनीकी कारणों से यह अंक संयुक्तांक के रूप में निकाला जा रहा है। इसमें अंक 5, 6 एवं 7 सम्मिलित हैं। सदस्यों को उनकी सदस्यता के अनुरूप निर्धारित प्रतियां दी जावेंगी।

सम्पादक बस्तर पाति

बस्तर पाति का अगला अंक लघुकथा विशेषांक होगा अतः लेखकों से निवेदन है कि वे अपनी लघुकथाएं ई मेल अथवा पत्र द्वारा भेजें। व्हाट्एप के माध्यम से भी रचनाएं स्वीकार की जाती हैं। इसके लिए 9425507942 का प्रयोग करें।

सम्पादक बस्तर पाति

भावना व भावुकता

मनुष्य एक भावना प्रधान प्राणी है। मनुष्य ही क्यों, शायद इस संसार का हर प्राणी भावनाओं से संचालित है। बात सीधी सी है–यदि भावना नहीं तो व्यक्ति रोबोट है, मनुष्य नहीं।

जब भावनाओं के बिना मनुष्य, मनुष्य नहीं बन सकता तो इन भावनाओं को नियंत्रण में रखना, काबू में रखना इत्यादि बातें क्यों सुनने मिलती हैं।

असल में–भावनाएं उस जल की तरह हैं जिस पर हमारी नाव तैरे न कि जल नाव में समाए। मनुष्य से भी अपेक्षित है कि वह भावनाओं के सागर में डुबकी लगाए, तैरे न कि डूब जाए। अति भावुक या नियंत्रणहीन भावुकता डुबाने का काम करती हैं। असल में जिस भावुकता की हम आलोचना करते हैं वह हमारे यही अति भाव हैं–कोरी भावुकता! यह व्यक्ति और जीवन की कितनी क्षति पहुंचाती है पता नहीं मगर जब साहित्य या कहानी में भावनाओं पे काबू न रखा जाए तो रचना डूब ही जाती है।

सार यही है कि ये संसार (भावनाओं से ओत–प्रोत) आपके ऊपर (या भीतर) समाया है या आप इनके ऊपर। नाव जल पर है या जल नाव पर!

कई रचनाकार एकदम शुष्क, नीरस किस्म की रचनाएं गढ़ते हैं–खासकर पश्चिमी साहित्यकार। (जिसकी शानदार फोटोकापियां हमारे यहां मौजूद हैं।) जहां तक मैं समझता हूं पश्चिमी लोग तर्कवादी पहले होते हैं–भावुक बाद में। हम पूर्वी लोग ठीक उल्टे हैं–भावुक पहले व तर्कशीलता तो बहुत दूर की बात हुई। इस पूर्व व पश्चिम के बुनियादी फर्क के कारणों पर हम नहीं जाना चाहेंगे, ये बहुत गहरी हैं और परम्पराओं से जुड़ी हैं। यह हमारे विकास से भी जुड़ा है। हम मूलतः आस्थावादी हैं तार्किक बहुत बाद में। हमारा साहित्य कभी भी हमारी नजर से पश्चिम के लोग नहीं समझ सकते, वैसे ही हम पश्चिम के साहित्य को उनकी आंखों से नहीं पढ़ सकते। पश्चिमी चीजें यहां ओढ़ी गयी हैं–फैशन के तौर पर लिया गया है या स्वयं को सदियों का गुलाम साबित करने हेतु प्रयुक्त किया गया है।

कहा गया है–हम अच्छे नौकर तो हो सकते हैं मगर अच्छे मास्टर नहीं।

मास्टर वही हो सकता है जो अंग्रेजी के इस जुमले को गहराई से समझता है–'बी योर सेल्फ' या फिर जो हमारे वेदों, बौद्ध व अन्य साहित्य में चीख–चीख कर कहा गया है–तुम वही हो जो तुम हो...अपना दीपक तुम स्वयं हो...अहम ब्रह्मास्मि...मैं ही ब्रह्म हूं। संसार मेरी प्रतिच्छाया....इत्यादि।

हमारे थोक के कला–साहित्य हमारे अच्छे नौकर होने को ही साबित करते हैं–तहेदिल से धन्यवाद जो कुछ गिने–

चुने मूर्धन्य हुए जिन्होंने साबित कर दिया कि वे अपनी ज्योति आप हैं।(यहां उनका नाम गिनाना मेरी योजना में नहीं ...आप स्वयं उन्हें ढूंढें तो अच्छा हो...पहले मेरे कहे के आशय को पूर्वाग्रहरहित होकर पकड़ने का प्रयास करें।)

अंधी नकल में हिन्दी के कई रचनाकार भावना या भावुकता को समझे बगैर संवेदनशून्य, शुष्क रचनाएं गढ़ते जाते हैं मानों उनके पात्र व्यक्ति नहीं रोबोट हों। जबकि सत्य ये है कि एक अच्छी रचना हमेशा हमारे मर्म पर प्रहार करती है। हम कहते हैं हमारा दिल भर आया। आंखें नम हो गयी। वैज्ञानिक रूप से कहें तो हमारे मस्तिष्क के दोनों हिस्से एक साथ सक्रिय हो जाते हैं। हम आध्यात्म के दरवाजे पर जा खड़े होते हैं। कलात्मक रचनाओं की यही महानता है–वे हमें एक ही वार में पलट देती हैं–हमें उच्च भूमि पे बैठा देती हैं।

आप अपनी पसंद की किसी भी रचना को उठाकर देखिए–उसने अवश्य ही आपके मर्म को भेदा होगा। संवेदित किया होगा तभी वो कालजयी होती है–क्योंकि मनुष्य बदलता है मगर उसकी भावनाएं सनातन है। बुद्धि, तर्क, तकनीक पर मानव ने बहुत काम किया मगर भावनाओं के संसार में वह जहां आदम काल में था, आज भी लगभग वहीं है। बस कुछ अभिव्यक्ति के तरीके बदल गये हैं। पहले झगड़ा होने पर लोग एक दूसरे का कत्ल कर देते थे–आज थाना–पुलिस होता है। पर, मूल वही है।

भावनाओं के सही होने पर सब सही है वरना उनके विकृत होने में देर नहीं लगती। साहित्य पढ़ते वक्त पाठक देखे कि वे पात्रों की भावनाओं से संवेदित हैं या उनके विकारों से ऊबे!

रचनाकारों को यहां सतर्क रहना समीचीन है।

भावनाएं हैं क्या...., वे कब भावुकता में बदल जाती हैं ? प्रश्न विचार योग्य है। हम इन्द्रियों और ज्ञानेन्द्रियों के मार्फत इस दुनिया से जो भी देखकर, सूंघकर, चखकर, स्पर्श, अहसास अर्थात वे तमाम तरह की प्रतिक्रियाएं हम प्रेषित करते हैं–वे सब हमारी भावनाओं के कारण ही हैं। गुस्सा, प्रेम, घृणा सभी भावनाएं हैं। ये ऐसी भावना हैं जिनकी पहचान बड़ी आसानी से हो जाती है। हम कहते हैं–अपनी भावना पे काबू करो। यानी गुस्से पर काबू करो। अपने प्रेम को काबू करो और कर्तव्य को विचारो। इत्यादि। ये सभी ऐसी भावनाएं हैं जो सतह पर लहर की तरह देखी जा सकती हैं। पहचानी जा सकती हैं। मगर कई भावनाएं इतनी सूक्ष्म होती हैं कि ना हम उन्हें पहचान पाते हैं ना ही दूसरे। जैसे सवेरा होते ही पक्षियों की चहकने की आवाज आयी। वर्षा की बूंदे तप्त ध रती को भिगोने लगी। एक प्यारा मुस्कुराता बच्चा आपको दिख गया या स्मृति में आ गया। आपको अपनी प्रेयसी की याद आ गयी। बचपन का कोई दृश्य, घटना सहसा आपके मस्तिष्क में कौंध गया। ये सभी वो दृश्य, घटनाएं हैं जो यह संसार आपसे प्रतिबिंबित हो रहा है। दरअसल आप प्रतिबिंबित हो रहे हैं। अपना या पराया भूलकर। क्यों ? क्योंकि आप ही वो प्राणी हैं जिसमें ऊर्जा है–आत्मा है, ऊर्जा या आत्मा ही आपको उद्वेलित कर रही है। (मस्तिष्क में चेतना बनकर) भावना से जोड़ रही है। और ये सुखद है। आपको तृप्त कर रही है। सुंदर फूलों का गुच्छा और बेली के फूलों की महक अगर आपको शांत रोमानी दुनिया में ले जाती है तो यह मनुष्य की भावनाशीलता है। दार्शनिक इसकी दूसरे तरह की व्याख्या करेंगे–लेकिन एक कला–साधक इन चीजों को अपनी ही तरह से समझने का प्रयास करेगा।

जैसे उपर्युक्त दृश्य सुखद हैं, उसी तरह गंदे सूअर का मुंह मारना और जर्जरता, गंदगी, ईष्या, कुढ़न इत्यादि की कल्पना ही आपके मनोभावों को पीछे अंधकार में ले जाएगी। यानी मनुष्य हर पल इन भावों के ऊपर सवार है–प्रिय देखकर प्रसन्न, अप्रिय देखकर (या विचार कर) अप्रसन्न!

क्या मानव नामक प्राणी अपनी भावनाओं को पढ़ने, जानने की कोशिश करता है ? उस पर कौन हर पल हुकूमत कर रहा है ? वह शासित है शासक ?

भावनाओं के कारण ही मनुष्य सौंदर्य की तलाश करता है। वह सौंदर्य के नये–नये आयाम ढूंढता है। वह अपने प्रेम, घृणा, क्रोध को एक लक्ष्य के साथ जस्टिफाई करना चाहता है।

इन भावनाओं का जिक्र कर एक लेखक या रचनाकार के लिए आखिर क्या प्रयोजन, निहितार्थ हो सकते हैं ?

प्रयोजन है। इन भावनाओं के कारण ही मनुष्य राग या विराग तत्व से जुड़ता है। उसकी कुछ संस्कारगत वासनाएं होती हैं। ये वासनाएं–सांस्कृतिक राग अत्यंत निजी होते हैं–मगर वे संसार से ही व्यक्ति में आकर चिपके होते हैं–इसलिए हमारा निजी राग सार्वजनिक भी हो जाता है। इसलिए साहित्य/कलाएं निजी होकर भी कभी निजी नहीं हो पातीं। वह मानव समुदाय और कभी–कभी सम्पूर्ण मानव समाज के लिए धरोहर बन जाती हैं। सच तो ये है कि ये जितनी निजी होंगी उतनी ही सार्वभौम भी! एक बार फिर आप कालजयी रचनाओं को ध्यान में रखकर इस पहलू से देखें। वे इतनी विश्वसनीय होती हैं कि 'निजी' 'सार्वभौम' बन जाता है। (अब इसके विपरित सोद्देश्य/एजेंडाबद्ध रचनाओं पर भी गौर फरमाएं।)

इन मनोभावों के ऊपर आचार्य रामचंद्र शुक्ल (चिन्तामणी भाग–1 एवं 2) ने अद्भुत किताब लिखी है। कला और रचना

से जुड़े हर रचनाकारों, पाठकों को इसका अध्ययन–मनन करना चाहिए। इन्हें समझकर ही हम इनका अर्थ समझ सकते हैं–

'ऐ कल्लू के बापू! जरा सुनियो तो... ।'

'हलो मिस्टर जॉन! क्या आप कुछ मिनट हमें सुनना चाहेंगे... ।'

उक्त दोनों संवादों में कई प्रकाशवर्ष की दूरी है। वे हमारे भाव को बिल्कुल अलग तरह से प्रभावित कर रहे हैं।

एक रचनाकार के लिए भावनाओं को कहां तक जानना, समझना जरूरी है। भावनाएं कब भावुकता में बदल जाती हैं–विचारणीय है।

कोई भी कलाकार या लेखक भावों की अभिव्यक्ति से परे नहीं जा सकता है। वह तो भवसागर में ही है। अच्छा या बुरा–इससे फर्क नहीं पड़ता कि कोई कफ़न के पैसे से शराब पीकर नाच रहा है या किसी की 'सद्गति' जानवर से भी बदतर हो रही है–फर्क तब पड़ता है जब रचनाकार अपने पाठकों/दर्शकों को द्रवित करने के बजाए स्वयं द्रवित हो जाता है। मृत्यु की अभिव्यक्ति के लिए जरूरी नहीं कि नायक सचमुच में ही मर जाए। या दूसरों को हंसाने के लिए स्वयं खूब हंसे। इसे उदाहरण से समझें–

एक बस्तर का कवि नक्सलवाद पर रोना रोता है–

कब–तक चलेंगी गोलियां, कब–तक बहेंगी लहू की धार. ...., मां का आंचल कब–तक होगा लहू–लुहान... ।

यह पूरी तरह भावुक अभिव्यक्ति है।

दूसरी अभिव्यक्ति है–

यहां गोलियां चलती हैं और बहती है खून की धार...., मां का दूधिया आंचल होता है लाल.... ।

दोनों में अंतर स्पष्ट है।

दूसरी तरफ बहुत से लेखक अनाड़ीपन के कारण अपने पात्रों को भावनाहीन तरीके से अभिव्यक्त करते हैं– मानों उनका पात्र भावनाशून्य हो। रोबोट। यह पश्चिम का रोग है। भावनाएं 'रिलेशनशिप' की चाह रखती हैं– अपना, पराया, ऊंच–नीच, नजदीक–दूर इत्यादि। पात्रों के संबंध शुष्क होंगे तो भावनाओं को उजागर करने का कहां स्थान मिलेगा ? पात्र चाहे अन्य पात्रों से या परिवेश से या स्वयं से–प्रतिक्रिया तो करेगा ही। एक भावना की (पात्र द्वारा) दूसरी भावना से क्रिया–प्रतिक्रिया होती है। संघर्ष होता है। रचनाएं तभी सजीव होती हैं।

क्या एक लेखक अपने पात्रों को जिंदा देखना चाहता है ? भावुक बनकर या भावनापूर्ण अभिव्यक्ति द्वारा ? ●

बस्तर पाति फीचर्स

आधे–अधूरे

नेता जी ने
खूब कालाधन कमाया!
और धीरे से
उसे स्विस बैंक
में पहुंचाया!!
लेकिन नेता जी
के सभी वायदे
निकले झूठे!
जनता के भाग्य
जनता से रूठे!!
तो ऐसे राजनीतिज्ञ
जनता के बगैर
आधे–अधूरे हैं!
वे तपाक से बोले–
यानी नेता जी
आंख के अंधे
गांठ के पूरे हैं!!

किस्मत

वे अपने क्षेत्र
में छा गये!
चापलूसी की
बदौलत मंत्री
पद पा गये!!
यानी उनकी
किस्मत जग गई!
किसी ने
कटाक्ष किया–
अंधे के हाथ
बटेर लग गई!!

चमचागिरी

वे पहाड़
क्या ठेलेंगे
उनमें राई
बराबर भी
नहीं है बूता!
लेकिन चमचागिरी
की बदौलत
उन्हें नेता जी
से वरदान में मिला
चांदी का जूता!!

कथनी–करनी

नेता जी स्वदेशी
चीजें अपनाने को
कहते हैं!
और खुद
साल में छै महीने
विदेशी दौरे
पर रहते हैं!!
मैंने कहा–
यह तो अंधेर है!
यानी,
आधा तीतर
आधा बटेर है!!

पहाड़ा

आजकल के
नेताओं ने
क्या पढ़ा
है राजनीति
का पहाड़ा..!
क्योंकि,
उन्होंने संसद
को संसद
नहीं रहने दिया
बना दिया
है अखाड़ा..!!

अंधा बांटे रेवड़ी

सगे संबंधी,
भाई भतीजे
और मित्र–यार
सभी अच्छे
पदों पर
आसीन हो जायें,
ऐसा हैं मंत्री जी
का ध्येय...!
यानी,
अंधा बांटे रेवड़ी
अपनों–अपनों
को देय...!

अविनाश ब्यौहार
'उमरिया पान.'
86–रॉयल एस्टेट कॉलोनी
माढ़ोताल, कटंगी रोड
जबलपुर–482002
मो.–9826795372

पद्मश्री मेहरून्निसा परवेज़ पर विशेष

वरिष्ठ एव प्रसिद्ध कहानीकार, संपादक पद्मश्री मेहरून्निसा परवेज़ जी पर केन्द्रित इस अंक की योजना मेरे दिमाग की उपज है क्योंकि मैं चाहता हूं बस्तर क्षेत्र से जुड़े साहित्यकारों के बारे में हर कोई जाने, लगातार जाने, पढ़े और बस्तर के बारे में बनी अपनी सोच को बदले। वह सोच जिसमें हर बस्तरवासी आदिवासी है और आधुनिक दुनिया से दूर बीहड़ में कंदमूल खाकर जीता है। देश में कहीं पर भी अपनी पहचान 'बस्तरवासी' बताते ही सामने वाला हमें मूर्ख और नक्सली मान लेता है जबकि सच इस बात से इतर कुछ और है। जब आवागमन के साधन नहीं थे आधुनिक सुख–सुविधाएं नहीं थीं तब से लेकर आज तक बस्तर अपनी राय देश और दुनिया के लिए स्पष्ट रूप से रखता रहा, अपनी उपस्थिति दर्ज कराता रहा। इस श्रृंखला में अनेक नाम हैं परन्तु इस अंक में पद्मश्री मेहरून्निसा परवेज़ जी।

इस योजना में आदरणीय नायडू सर कैसे जुड़े यह भी एक विशिष्ट घटना हैं। पद्मश्री मेहरून्निसा परवेज़ जी की पत्रिका 'समरलोक' में मेरी एक कहानी छपी थी। और उस कहानी को नायडू सर ने पढ़ा। उन्हें मेरा नाम कुछ जाना पहचाना सा लगा। वे तुरंत अपने घर से निकले मुझे खोजने को और उन्होंने मुझे अपने ही घर की अगली गली में पाया। तब मुझे भी जानकारी मिली कि नायडू सर भी साहित्य में हस्तक्षेप रखते हैं। लगातार हुई बातचीत से जानकारी मिली कि उनकी बातचीत मेहरून्निसा जी से होती रहती है। उनके साथ घनिष्ठ संबंध हैं। बस फिर क्या था अंधे को चाहिए दो आंखें! तुरंत ही इस अंक की नींव रख दी गई। और यह अंक नायडू सर की विशिष्ट मेहनत का नतीज़ा है। अंक इस परिशिष्ट का संपादन आदरणीय नायडू सर ने किया है। मैं उनका आभारी हूं। यह उनका बड़ा आशीर्वाद है मुझ पर।

बी. एन. आर. नायडू
सेवानिवृत्त प्राचार्य
शा. उच्चतर माध्यमिक विद्यालय
नायडू मेन्शन
नायडू गली, मेन रोड
जगदलपुर–494001 छ.ग.
मो.–9424280113

पद्मश्री मेहरून्निसा परवेज़
बस्तर के साहित्य मरू की गुप्त सरस्वती

आज ये बात अविश्वसनीय, अप्रत्याशित, अटपटी भले ही लगती हो परन्तु साहित्य सलिला मेहरून्निसा पर यह बात सटीक–सार्थक है। एक सलिला अपने शैषव में भले ही क्षीण धारा की रही हो, परन्तु उसके साहित्य सृजन की कल–कल, छल–छल, नाद–निनाद से अपने अस्तित्व अर्विभाव का बोध कराती उत्कृष्ट हृदयस्पर्शी रचनाओं *आंखों की दहलीज, उसका घर, कोरजा, मेरी बस्तर की कहानियां, आदम और हव्वा, टहनियों पर धूप, गलत पुरूष* के सृजन के साथ बस्तर को छोड़ा, फिर मध्यप्रदेश में उनका पुनः प्रागट्य, अनेक रचनाओं की अजस्त्र धाराओं के साथ विराट दिग्दर्शन, त्रिवेणी में गंगा–जमुना की मध्यस्थ सरस्वती की तरह, प्रमाणिक सिद्ध कर गया।

वे मध्यप्रदेश एवं छत्तीसगढ़ की प्रथम, बस्तर की प्रथम हिन्दी की मुस्लिम महिला लेखिका रहीं हैं। हिन्दी साहित्य सृजन उन्हें त्रिवेणी की गुप्त सरस्वती की तरह स्थापित कर गया। बस्तर में सबकुछ खोकर भी वो मुकाम हासिल किया जो असंभव लगता है। इनकी रचनाओं की उत्कृष्ट शैली सशक्त मनोविज्ञान एवं सामाजिक, पारिवारिक संदर्भ में नारी के द्वंद, अंर्तव्यथा कथा से जुड़ी रचनाओं ने जैसे समरांगण, पासंग, अकेला पलाश, सोने का बेसर, अम्मा उन्हें साहित्य लोक के इंद्रासन पर विराजित कर दिया। उनकी रचनाओं को व्यक्त करना उनकी व्याख्या करना बहुत सहज भी है दुरूह भी है क्योंकि नारी मनो विज्ञान की प्रकृति, परिवेश की तर्ज पर इतनी विषद् व्याख्या हर किसी के लिए संभव नहीं है। परन्तु मेहरून्निसा बाजी ने कर दिखाया। खूब किया।

अतीत की कड़वाहट, असीम वेदना अन्तर्मन के नासूर की छटपटाहट, इस पर विधाता का क्रूर, निर्मम प्रहार झेलती एक नारी, अपने विशिष्ट सृजन गंधराग और परिमल से वैश्विक स्तर पर बस्तर की कुंज कली बन गई। त्रैमासिक पत्रिका 'समरलोक' का सृजन कर उन्होंने बताया कि नारी मात्र सृजन का प्रतीक नहीं अपितु सृजन शक्ति है, प्रकृति भी उसके सृजन से अपने संतुलन समन्वयन का नियमन एवं आयाम रचती है।

एक लेखिका के तौर पर मात्र लिखना ही नहीं बल्कि उनका एक और विलक्षण गुण है, पाठकों के साथ उनके सुख–दुख को साझा करने का। उनके सहज सादे संवाद हर पाठक को उनसे बांध लेते हैं। बातें करती वे उस व्यक्ति के लिए अपनी हमदर्द बन जातीं, सामने वाला अभिभूत, अवाक, जड़ हो जाता। उनका यह प्रयास अनूठा है परन्तु साथ ही अपने चारो ओर एक ऐसा झीना परदा भी रखती हैं जिससे हर कोई उनकी अतीत की कड़वाहट, दुख को कुरेदने का साहस न कर सके।

बालाघाट, जबलपुर, बस्तर, झाबुआ, मन्दसौर, रतलाम

जैसे आदिवासी बहुल वनांचल की तो वो अद्‌भुत चितेरी हैं। एक ओर उन्होंने आदिवासियों की जीवन शैली, उनकी परम्परायें, संस्कृति की चित्रमय प्रस्तुति से जीवन्त किया, साथ ही उनके उत्थान–विकास के लिए सतत् सक्रिय प्रयासरत रहीं और आज भी हैं। उनमें व्याप्त कुप्रथा, कुरीतियों के प्रति नारी चेतना को जागृत कर हितकारी योजनाओं का सूत्रपात कर उन्हें आर्थिक रूप से स्वालम्बी बनाकर विकास की धारा से जोड़ने का भी प्रयत्न करती आ रहीं हैं। इसका ज्वलंत उदाहरण है बांछड़ा जाति की महिलाओं के लिए किया गया प्रयास। उनके इस कार्य से प्रशासन सामाजिक संगठनों ने भी इस दिशा में सक्रिय योगदान देना शुरू कर दिया।

उनके पदभार एवं सम्मान के बारे में संक्षिप्त विवरण इस प्रकार है–

सन् 1974 में बाल विकास एवं कल्याण परियोजना की अध्यक्ष।

सन् 1977 में मध्यप्रदेश समाज कल्याण मंडल की बस्तर से सदस्य। आकाशवाणी कार्यकारणी समिति तथा बैंकिग भर्ती बोर्ड की सदस्य।

1993 से 1996 तक मध्यप्रदेश में पिछड़ा वर्ग की राज्यमंत्री स्तर की सदस्या।

महात्मा गांधी ट्रस्ट की न्यासी।

सन् 1980 में 'कोरजा' उपन्यास पर मध्यप्रदेश का अखिल भारतीय महाराजा वीरसिंह जूदेव राष्ट्रीय पुरस्कार, उत्तरप्रदेश हिन्दी संस्थान लखनऊ द्वारा सम्मानित। सन् 1995 में सुभद्रा कुमारी चौहान पुरस्कार।

महात्मा गांधी के जन्म के 125 वें वर्ष पर क्रियाशील लेखन एवं जनजातीय सेवा के लिए 25 मई 1995 को दुर्ग में छत्तीसगढ़ सम्मेलन में सम्मान। सन् 1999 में लंदन में आयोजित विश्व हिन्दी सम्मेलन में सम्मान।

19 जून 2003 में त्रैमासिक पत्रिका 'समरलोक' के श्रेष्ठ संपादन के लिए श्री रामेश्वर गुरू पुरस्कार।

सन् 2005 में भाषा भूषण सम्मान।

सन् 2005 में भारत के राष्ट्रपति के द्वारा पद्मश्री सम्मान।

उनकी कृतियों का अंग्रेजी, उर्दू, मलयालम, गुजराती, मराठी, ओड़िया और नेपाली भाषा में अनुवाद भी हुआ है। दूरदर्शन से उनकी रचनाओं पर धारावाहिक भी प्रसारित हुए। लोकप्रिय धारावाहिक अवंतिबाई (1998) का निर्माण एवं निर्देशन भी किया। टेलीफिल्म 'लाजो बिटिया' भी बनाया। अनेक सम्मेलनों में उन्होंने इंग्लैण्ड, फ्रांस, रूस जैसे देशों का भ्रमण भी किया। ●

कथाकार का सफर

मेहर बाजी ने जून 2015 के 'समरलोक' में आत्मदृष्टि में लिखा है बेगम अख़्तर को हम अदब से याद कर रहे हैं, उन्होंने अपना अध्यात्म, अपने जीवन से ही अर्जित किया है। हम भी अपने घायल मन को क्यों नहीं शौक में डुबो देते। उनकी अपनी बात उन पर सौ फीसदी लागू होती है।

आज 'बस्तर पाति' का यह अंक जिन्हें समर्पित है, उनके लिए बहुत ज्यादा शब्दजाल, वाक्यविन्यास, विरूदावली का स्थान ही नहीं है। सांसारिक दुख–दर्द के साथ–साथ ईश्वरीय निर्मम प्रहार झेलकर भी न वो थकीं न हारीं। अपनी सारी विसंगतियों को सृजन की चक्की में पीसकर एक नई आभा, नये कलेवर के साथ, विश्व स्तर पर अपना दावा प्रस्तुत कर रही हैं। इतना कुछ पा लेने के बाद भी उनकी जड़ें जमीन की अतल गहराई में हैं और पांव जमीन पर ही हैं। मेरी समझ में सफलतम, शीर्षस्थ लेखकों के बीच प्रसिद्धि के बावजूद वो अपने सामान्य पाठकों से जुड़ी रहना चाहती हैं। उनके साथ संवाद, पत्र–व्यवहार से एक ऐसा रिश्ता कायम कर लेती हैं जो बड़ा सहज, सपाट और सामान्य होता है। आज के परिवेश में ये बड़ा ही असामान्य असहज होता है और यही गुण, भीड़ में उन्हें अलग पहचान देता है।

जीवन के सारे अनुभवों के आधार पर भारतीय नारी की निष्ठा, कर्मठता, त्याग और उसकी तपस्या, साहस को ऊंचा उठाने का प्रयास किया; मात्र नियति, विडम्बना जैसे शब्दों का सहारा न लेकर। नारी को आत्मसम्मान, आत्मनिर्भरता का पाठ पढ़ाकर समाज में सिर उठाकर जीने का हक दिलाया है।

उनके सारे पात्र जो ग्रामीण हों, आदिवासी हों, मध्यमवर्गीय हों कैसी भी परिस्थितियां हों निकृष्टतम जीवन जीने के अभ्यस्त पात्रों को एक मार्ग जरूर दिखाया है। नारी को मात्र समझौते से जीने के बजाय समन्वयन के साथ अपना रास्ता बनाने का गुर बताया है। नारी को कैसी भी विपरित परिस्थितियों में रोते हुए, ढोते हुए, हारते हुए, समाज ईश्वर के क्रूर विधान का जवाब देने में सशक्त, सक्षम मानकर उन्हें वही आकार दिया। नारी को अपनी जिन्दगी सही ढंग से, सम्मान से जीने का अधिकार मंत्र तो दिया ही है। इस बात की तसदीक करती 'अयोध्या से वापसी, कानी बाट, देहरी की खातिर, शनाख्त, रेगिस्तान कहानियां' तथा 'कोरजा, अकेला पलाश समरांगण, पासंग' जैसे उपन्यास हैं।

श्रीकृष्ण राघव श्रीमती परवेज़ के विषय में कहते हैं, आज चालीस वर्षों से उनका लेखन जारी है, यह तो समझ आता है परन्तु लेखक नए–नए रूप धरता है, समझ से परे है पकड़

में नहीं आता, थाह भी नहीं मिलती हो ऐसा बहुरूपिया है। मात्र वे लेखिका ही नहीं सरकारी, गैर सरकारी संस्थाओं से जुड़ी हैं। कहीं सलाहकार, कहीं न्यासी, कहीं अध्यक्ष, एक प्रशासनिक अधिकारी की पत्नी होने बावजूद उनका जुड़ाव सामाजिक सरोकार से है। आदिवासियों की वे हितचिन्तक हैं। लेखिका के तौर पर उन्होंने अपने को परत दर परत हमेशा छिपाये रखा परन्तु सम्पादक के तौर पर तह दर तह अपने आप को उधेड़ती चली जाती हैं इसका प्रमाण है 'समरलोक' की 'आत्मदृष्टि'। मेहरून्निसा जी का भोगा सत्य सामाजिक सत्य होता है जो लाख–लाख पाठकों के निजी सत्य को उद्वेलित करता है कहीं आक्रामक होता है, कहीं निरीह, रोता, दुलारता, मुस्कराता, रिझाता भी है, और शनैःशनैः पाठकों के सत्य से जुड़कर उनके मन में घर कर जाता है। बाजी की सोच और उनका सत्य जब समाज से रूबरू होता है तो समाज को राहत देता है, उनके गम में शरीक होता है, मरहम का काम करता है, उनकी भावनाओं को जबान देता है।

आज भी बस्तर उन्हें भुला नहीं पाया है, उन्हें, मेहरून्निसा जी को उतना ही, आज भी याद करता है, जिस शिद्दत से वे बस्तर को याद करती हैं। बस्तर में उनके किशोरवय एवं यौवन के सतरंगी धागों का ताना–बाना आज भी चटक रंगों में दिखता है, यहां की माटी में उनके पगछाप, अमिट वो निशान हैं जो मेहर बाजी को आज भी बस्तर में उनकी उपस्थिति दर्ज कराते हैं।

ख्याति–उपलब्धियों के संसार में डूबकर भी उनके मन का बस्तर से जुड़ाव, माटी से प्यार, धुंधले होते चेहरों को ढूंढने की हर चन्द कोशिश निरर्थक नहीं रही।

उसी का प्रतिफल है 'बस्तर पाति का यह 'विशेषांक'। सम्पादक सनत जैन का यह प्रयास निसंदेह सराहनीय है।

मेहरून्निसा परवेज़ के कृतित्व में नायिकाएं

मेहरून्निसा परवेज़ की नायिकाएं तो अनेक हैं, जो हैं तो सामान्य नारियां, परन्तु समय के बदलाव, अन्तराल के साथ उनमें भी परिवर्तन प्रत्यावर्तन, परिलक्षित है। जीवन के कटु अनुभव, कसैले सत्य को स्वीकार करती हैं, परम्पराओं एवं सामाजिक मानदंड के अनुरूप समझौता भी करती हैं, परन्तु नारी मनोविज्ञान एवं मानसिक द्वंद के आगे नतमस्तक भी हैं। नारी के दुःख उत्पीड़न का, शारीरिक, मानसिक संत्रास का ऐसा विस्तृत ससांर उन्होंने रचा है जो अद्भुत है, उनकी सूक्ष्म पैनी दृष्टि ने नारी के अन्तरतम के अनछुये प्रसंगो को भी नहीं छोड़ा, चाहे वो यथार्थवाद एवं आदर्शवाद के बीच झूलती किंकर्तव्यविमूढ़ नारी हो, स्त्री–पुरूष के असंतुलित, असहज जड़ रिश्तों को ढोती हों। अपराध बोझ से नमित, तिरस्कृत ग्लानि में जीने वाली नारी हो।

'नारी' सृजन शक्ति का नाम है, यही विशेष नारी के प्रेरणा मूलक गुणसूत्रों के विशिष्ट बिन्दु पर गढ़ने वाले गुणों का संकलन, नारी को हर प्रतिकूल परिस्थिति में लड़ने जूझने की ताकत देता है, उसे सक्षम बनाए रखता है। पुरूष जहां वर्तमान की प्रतिकूलता, विषम विसंगतियों से हताश कुंठित होता है, भागता है, वहीं नारी प्रत्यक्ष में रोकर चीख–चिल्लाकर कमजोर भले ही लगती है, पर अन्दर से कठोर शिला की तरह होती है, हर चन्द कोशिश से प्रतिकूल स्थिति को अनुकूल बनाने की जिद उसमें होती है। जीवन के अन्तिम समय तक अपनी लड़ाई लड़ने की हिम्मत व धैर्य उसके साथ चलते हैं। नारी की अस्मिता अस्तित्व से जुड़े अनेक 'यक्ष प्रश्नों' का समाधान करने में लेखिका को महारत हासिल है।

लेखिका का यह नारी विमर्ष, विश्लेषण इतना सत्य, हृदय ग्राही होता है पाठक मात्र पढ़ता ही नहीं वरन चरित्र के संघर्ष, पीड़ा की अनुभूति को अनुभव कर पात्र के साथ जीने लगता है, ये लेखिका की अभूतपूर्व उपलब्धि है। इस विधा की वे सिद्धहस्त चितेरी हैं। ऐसा लगता है कि जटिल जुझारू नायिकाओं के साथ उनका भी हतपिंड पूरी संवेदना सच्चाई के साथ दोलन करता है, स्पन्दित होता है। लेखिका ने नारी के दैन्य निकृष्टतम जीवन, वैभव, ऐश्वर्य में विचरता नारी जीवन, अपनी अस्मिता नैतिक मूल्यों को पहचान कर एक सफल जीवन जीने की क्षमता से लेखिका ने नारी को नवाजा है, ऊंचा उठाया है।

इन नायिकाओं में जो मुझे एक चरित्र जो सबसे अच्छा लगता है वो है 'कोरजा' उपन्यास की नानी 'अरमान बी' का। आम जिन्दगी जीने की जद्दोजहद में लगी नानी 'अरमान बी' एक आम हिन्दुस्तानी नारी का पर्याय बन सामने आती है। उसकी हिम्मत, जीने की जिद तकलीफों से लड़ने के

प्रयास में भले वो झगड़ालू कर्कशा लगती हो, परन्तु कर्तव्यनिष्ठ जुझारू, अपने दायित्वों को हजार मुश्किल के बावजूद निर्भिकता पूर्वक गृहस्थी की गाड़ी के साथ खींचती है। हर बेघर, आश्रय विहीन लोगो को अपनाकर उनकी सरपरस्त बन जाती है। हाड़तोड़ मशक्कत से पत्थर सी होकर भी इन्सानियत, कर्तव्यनिष्ठा में बेमिसाल है। धर्म–कर्म और फर्ज का समन्वयन, सन्तुलन उसे, साधारण होते हुए भी आम भीड़ से अलग असाधारण बनाते हैं। दिन–रात काम में मशीन की तरह लगी रहती है। जिल्लत हिकारत के साथ भी उसका एक मौन मूक समझौता है, घुट–घुट कर उसे स्वीकारती है, उसे न तो किसी से शिकवा है न गिला। उसके ह्रदय की विशालता उदारता है, किसी के भी प्रति कटुता नहीं पालती बल्कि सबको दुआ ही देती है उनके सुखद भविष्य की मंगलकामना करती है। यही गुण कमोबेश उसकी लड़की सज्जो में भी है। नानी के कहे गए एक वाक्य में प्रतिफलित होता है। नानी का जीवनवृत्त, उसने जो भोगा, जो सहा वो किसी पर भी न हो अनवरत जीवन के अंतिम क्षणों तक जूझती, पीड़ा भोगती छटपटाती रही पर सबको यही कहती गई कि मेरी बदकिस्मती का साया भी तुम पर न पड़े।

दूसरा चरित्र है कहानी 'शनाख्त' की मां का जो बेमानी बेकार से लगते रिश्तों के बीच मानवीय मनोविज्ञान एवं संवेदना का बड़ा नाजुक सा सम्मिश्रण है, असहनीय बोझ ढोती हुई, जवान होती लड़की को सहेजने में सुरक्षा में लगी रहती है। पति यदा–कदा आता है। तो अपनी इच्छा भी एक वेश्या की तरह पूरी कर लेती है, क्षणभर के उन्माद आवेश की तृप्ति के बाद उसका जीवन 'ढाक के तीन पात' की तर्ज पर चलने लगता है। पुरूष की प्रवृत्ति गलत दृष्टि अपनी ही पुत्री पर पड़ती देख, शेरनी की तरह बिफर पड़ती है। अपमान, लांछन सहते हुए भी उसे घर से ही नहीं अपने जीवन से भी निकाल बाहर कर देती है। मृत पति की शिनाख्त न कर अपनी लड़की के भविष्य को सुरक्षित करती है। वहां एक योद्धा की तरह सी मुश्किलों से निजात पा लेती है।

थोरा एवं लालमणि, भिल्लला एवं बांछड़ा समुदाय से ताल्लुक रखती हैं। 'सूकी बयड़ी' की नायिका, 'थोरा खेलाबड़ी' की नायिका लालमणि दोनों पिछड़े समुदाय एवं आदिवासी समुदाय की है। श्रीमती मेहरून्निसा परवेज़ ने इन दोनों नारियों का उनकी जीवन शैली एवं रीति–रिवाजों का ऐसा वर्णन किया है कि उन्हे आदिवासी विशेषज्ञ की संज्ञा दी जा सकती है, वो नृतत्व शास्त्री भले न हो परन्तु आदिवासी बांछड़ा समुदाय को पूरी निष्ठा से जिया है। अंग्रेज लेखक द्वय ग्रीक्सन एल्विन ने बैगा, गोंड, मुरिया, दोरला आदिवासियों को, उनकी जीवन शैली को वर्णित किया है, वहीं श्रीमती मेहरून्निसा कहानियों में इन जनजातियों की उनकी संस्कृति को इस तरह पिरोकर प्रस्तुत किया है कि पाठक पात्र, परिवेश उनकी जीवनचर्या दुःख त्रासदी के साथ सांझा कर आत्मसात कर लेता है। इसका प्रमाण है कहानी 'देहरी की खातिर' आज के पचास साल पहले बस्तर की ग्रामीण पृष्ठभूमि पर ये कथा, फिल्म की रील की तरह घूमने लगती है। नायिका युवती है, एक निपट ग्राम्या, उन्मुक्त जीवन जीने वाली, पर कुछ मर्यादा की लक्ष्मण रेखा के अन्दर। ऐसे परिवेश में स्वछंद विचरती नायिका एक कुंआरी मां बन जाती है, तब पिता–विमाता सब उसके खिलाफ हो जाते हैं उसे घर से बेघर कर दिया जाता है और एक देहरी की आस में 'नानी आया' या काकी का घर उसे आश्रय देता है। यहीं उसको एक लड़का होता है, संतान सुख से वंचित काकी के साथ नायिका बच्चे को लेकर वो आश्वस्त रहती है, परन्तु पिता तुल्य काका उस पर बुरी नजर डालता है और अनाचार की कोशिश करता है, पति की कुचेष्टा देखकर काकी टंगिये से वार कर उसकी हत्या कर डालती है, यह वो निर्णय का पल होता है, नारी की छठी इन्द्रिय सक्रिय हो उठती है, एक विद्रोह जागता है उसके अन्दर की आग भी उसे उसके बच्चे पर ऐसे ही अनाचार होते रहेंगे, यह सोचकर बच्चे को सम्हालती काकी को छोड़कर खून से सनी देह, कपड़े टंगिया लेकर गांव से भागती है और जगदलपुर के थाने पहुंचकर हत्या का दोष स्वयं पर लेकर, जेल पहुंच जाती है। जिस देहरी की तलाश में वो जूझ रही थी, वो अनायास एक झटके में, उसके लिए, निर्णय ने दे दिया। जेल की देहरी के भीतर उसकी देह सुरिक्षत हो गई साथ ही उसके पुत्र को ममता वात्सल्य एवं जिम्मेदारी तथा संरक्षण की, काकी की देहरी मिल गई।

'सूकी बयड़ी' की नायिका, थोरा रंग काला होने पर भी गुणी थी, गरीबी झेलते बाप–मां के चार बच्चों में सबसे बड़ी समझदार गुणी सहनशील है छोटी बहन होरा जो बहुत सुन्दर है एक साथ एक घर में ब्याह दी गई, थोरा का पति उसके बांझ होने पर काले रंग को लेकर प्रताड़ित करता रहा। अन्त में जब उसने छोटी बहन होरा पर बुरी नजर डाली तो थोरा बड़ी सूझबूझ से होरा को उससे बचाती आई। अन्त में दूसरी सौत भगौरिया से लाने पर उसे कोठरी खाली करने को कहता है, नायिका का स्वाभिमान उसे इतनी हिम्मत देता है कि इस अन्याय के प्रतिकार में तन कर सामने आती है बड़े गर्व से अपने अधिकार अपने विधिवत ब्याहता होने की घोषणा पूरे गांव के सामने कर अपनी स्थिति मजबूत करती है। पति की हत्या के बाद पुलिस के सामने इसे दुघर्टना बता देती है पूरा गांव उसकी प्रशंसा करता है, आदर देता है इस तरह

'सूकी बयड़ी' थोरा, 'ऊंची बयड़ी' बन जाती है जहां से भविष्य का सुख–सम्मान, छोटी बहन होरा की गृहस्थी सबका प्रमासित पक्ष नजर आने लगता है। 'सूकी बयड़ी' में फसल न लगती हो परन्तु होरा ने सुखद भविष्य के नारी के सम्मानजनक वद के प्रत्यावर्तन से 'सूकी बयड़ी' विशेषण का विलोम रच डाला।

इस प्रक्रम की अन्तिम नायिका कहानी 'खेलावड़ी' की अप्रितम सुन्दरी लालमणि है, जो बांछड़ा जाति की है। बांछड़ा जाति की स्त्रियों का जन्म ही होता है वेश्यावृति के लिए और इस परम्परा, कुप्रथा के निवर्हन के लिए वे बाध्य हैं। इस विषय पर लेखिका का प्रयास जारी है। समाजसेवी संस्थाओं, शासन–प्रशासन का ध्यान भी इस ओर आकृष्ट किया। उनके उत्थान विकास की दिशा में उनके प्रयास अब भी जारी हैं। ऐसे परिवेश ऐसी कुप्रथा में जीने वाली 'लालमणि' का, उसकी बेबसी, मजबूरी का ठाकुर उमेर सिंह के साथ मर्यादित, समर्पित जीवन जीने का, लेखिका ने बड़ा ही मार्मिक हृदयस्पर्शी चित्रण किया है। मृतक ठाकुर उमेर सिंह का शव एक ओर रखा हुआ है, दूसरी ओर हवेली में गोद लेने की रस्म, वारिस का चुनाव, जायदाद की हिफाजत के लिए संरक्षक का चयन इस स्वार्थ सिद्धि के खेल की गहमागहमी के बीच–एक पतित, निम्नवर्ग की नारी आती है जिसकी छटपटाहट, उसका संताप मात्र मृत ठाकुर के अंतिम कर्मकांड विधि विधान से हो, शास्त्रवर्णित उचित उत्तराधिकारी द्वारा हो जो ठाकुर उमेर सिंह एवं उसका पुत्र है। उसे किसी भी प्रकार की दौलत, जायदाद से कोई मोह नहीं परन्तु लोगों के द्वारा ठाकुर को निःसंतान कहना उसे सहन नहीं था, और ठाकुर के नाम से जुड़े इस कलंक को धोने की यह पीड़ा उसे थी।

अपढ़ सात्विक परम्पराओं से अनभिज्ञ होते हुए भी उसे इतना ज्ञात था, कि पुत्र के हाथ से मुखाग्नि, पिंडदान, खारी विसर्जन हो, उसकी यह पीड़ा मृतदेह के मुक्ति के लिए निस्वार्थ सोच एक विशाल आयाम दे जाते हैं जहां भारतीय जन मानस में स्थापित उन उच्च आदर्श दृष्टान्त के समकक्ष रखते हैं जो आज भी दैदीप्तमान हैं। इस कार्य को सम्पादित करने के लिए दुस्साहस के साथ अस्थि फूल चुनकर दूर नर्मदा के तट पर विधि विधान से पिंडदान, खारी विसर्जन अपने पुत्र से करवा लेती है। अपने मन की शान्ति एवं ठाकुर के मोक्ष की कामना के आगे पाठक नतमस्तक हो जाता है। एक सामान्य खेलावड़ी पतिव्रता सहधर्मिणी पति की अनुगता का मर्यादित पद अपने प्राजंल, पुनीत कृत्य एवं सोच से पा लेती है।●

मेहरून्निसा परवेज़ का सम्पादकीय साहित्य

लक्ष्मण सहाय
लक्ष्मीगंज, लश्कर,
ग्वालियर–1
म.प्र. 474001
फोन 0751–2380113
मो.नं. 09826905758

हिन्दी, अंगरेजी, फ्रेंच, चीनी आदि के साहित्येतिहास में–संस्मरण, रेखाचित्र, पत्र–साहित्य, डायरी–साहित्य, साक्षात्कार, जीवनी इत्यादि को नई विधाओं के रूप में मान्य कर लिया गया है। साहित्य सृजकों ने इनके गुण–दोषों पर प्रकाश भी डालना प्रारंभ कर दिया है, जिसके आधार पर शोध–कार्य भी किया जाने लगा है।

पर जिन साहित्य मनीषियों ने इन विधाओं में साहित्यिक लक्षण देखकर, उन्हें विधा के रूप में स्वीकार किया था, उनके अतिरिक्त इन जैसी वैचारिक दृष्टि से सम्पन्न और भी विधाएं थीं, वह उस सम्मान से छूट गयी हैं जैसे 'भूमिका', 'सम्पादकीय' इत्यादि। साहित्यिक मानदण्डों की कसौटी पर इन विधाओं को साहित्य–मनीषियों, पंडितों द्वारा साहित्यिक मूल्यों के निष्कर्ष पर इनकी भी परख करना चाहिये थी, जिनमें वे सभी साहित्यिक मूल्य पाये जाते हैं। इन मूल्यों के आधार पर नयी विधाओं के साथ इन्हें भी विधा का स्थान देना चाहिए था। पर ऐसा नहीं हुआ। इसलिए इस पर विचार होना आवश्यक है। 'सम्पादकीय' एवं 'भूमिका' में वस्तु–विन्यास एवं शिल्प–विन्यास, उत्कृष्ट स्थिति में विद्यमान है। इन मूल्यों के आधार पर 'सम्पादकीय' को साहित्यिक विधा की परिसीमा में भी रखना चाहिये था, किन्तु यह अभी तक नहीं हुआ है। मैं जानता हूं, अनेक विद्वान, साहित्य के पंडित मेरे विचार से सहमत नहीं होंगे और बहुत से हो सकते हैं। इस ऊहापोह के असमतल वैचारिक मतों से अपने को अलग कर, यह घोषणा करता हूं कि नई विधाओं के समान ही 'सम्पादकीय' और 'भूमिका' भी साहित्यिक विधाएं है। इस मूल्यवान दृष्टि को केन्द्र में रखकर ही मैं मेहरून्निसा परवेज़ की साहित्यिक सम्पादकीय पर अपने अनगढ़ अव्यवस्थित विचारों को व्यक्त करने का प्रयास कर रहा हूं।

मूलतः मेहरून्निसा परवेज़ प्रसिद्ध कथाकार हैं। उनकी कहानियों–उपन्यासों से साहित्य–संसार सुपरिचित है। किन्तु समय के फेर के परिणामस्वरूप उन्हें सम्पादकीय लिखना पड़ी है, जिसे वह एक निष्ठावान सम्पादक के रूप में निर्वहन कर रही हैं। क्यों कर रही हैं ? इस संबंध में सम्पादक मेहरून्निसा परवेज़ ने 'समरलोक' पत्रिका के प्रथम अंक में लिखा है–

'कई स्थितियां, मनःस्थितियां, परिस्थितियां, विडम्बनाएं अपने खट्टे खमीर से लेखक का निर्माण करती हैं। अपने परिवार से परिजनों को कब्रस्तान में दफ़न देख मन का ताल

पहले ही सूख चुका था। जब अपने जवान पुत्र का शव देखा, तो मन स्तम्भित जड़वत–सा, सांस लेना भी जैसे भूल गया। सब कुछ दुर्भाग्य के अंधकार ने ग्रस लिया था। जीवन का जहाज गहरे समुंदर में डूब चुका था। असहाय दुर्बल, टूटे, थकित मन से मैंने अपने पुत्र समर की स्मृति में उसी के नाम से लोक–उत्थान के लिये समर्पित पत्रिका का प्रकाशन का बीड़ा उठाया है।' (आत्मदृष्टि, सम्पादकीय, समरलोक, वर्ष, 3 1 पृ. 1)

इस कथन से दो मूल बिन्दु उजागर होते हैं, एक पुत्र समर की स्मृति में समरलोक पत्रिका का प्रकाशन किया गया और दो, पत्रिका प्रकाशन के पार्श्व में लोक–उत्थान का अमूल्य विचार। इस विचार–दृष्टि से प्रेरित होकर सम्पादक मेहरून्निसा परवेज़ ने जिस पत्रिका का प्रकाशन किया, वर्तमान में उसकी अवस्था पन्द्रह वर्ष की हो गयी है। प्रायः ध नाड्य या शासकीय विभाग पत्रिकाओं का प्रकाशन करते हैं, पर 'समरलोक' पत्रिका का प्रकाशन उस नियामकों के द्वारा नहीं हुआ है। इस पत्रिका का प्रकाशन व्यक्तिगत साहस से, साहित्य–सर्जक मेहरून्निसा परवेज़ द्वारा किया गया है और उन्होंने सम्पादक का दायित्व किसी अन्य रचनाधर्मी को न देकर, स्वयं वहन किया है, समर्थता के साथ।

साहित्यिक पत्रिका के सम्पादकीय प्रायः साहित्य–सर्जक ही होते हैं, – जैसे 'धर्मयुग' के सम्पादक धर्मवीर भारती, 'दिनमान' के अजेय, रघुवीर सहाय, सर्वेदयाल सक्सेना, 'सारिका' के मोहन राकेश, कमलेश्वर, 'हंस' के प्रेमचंद, कालान्तर में राजेन्द्र यादव आदि। इसी क्रम में 'समरलोक' की सम्पादक मेहरून्निसा परवेज़ हैं, जो उल्लेखित साहित्यकार सम्पादकों के समान साहित्य–सर्जक भी है। जिनकी आशातीत सम्पादकीय हैं। उन्होंने सम्पादक–धर्म का तटस्थ भाव से निर्वहन किया है। उनकी साहित्यिक पत्रिका की सम्पादकीय में वह सभी साहित्यिक गुण और लक्षण पाये गये हैं, जिनकी साहित्यिक पत्रिका की सम्पादकीय में आवश्यकता पड़ती है।

यहां यह अभिव्यक्त करना आवश्यक है कि मेहरून्निसा परवेज़ ने समरलोक पत्रिका के मूलतः किसी–न–किसी पक्ष को लेकर विशेषांक निकाले है। यह विशेषांक,–नारी, लोक साहित्य, डाक, कथा, युवा, आदिवासी, सामाजिक सद्भाव, लोकतंत्र, लघुकथा, ऐतिहासिक, प्रेमचंद शताब्दी, उर्दू, हिन्दी कहानी, नाटक, त्यौहार, प्रेमकथा, विभिन्न भाषा, सम्पादकीय, रेखाचित्र, यात्रा, पत्र, गणिका लोकनाट्य आदि शीर्षक से प्रकाशित हुए हैं। इन विशेषांकों की सम्पादकीय विषय–विशेष के अनुरूप है। मेहरून्निसा परवेज़ ने विषय–विशेष को सम्पादकीय में व्यवहारिक, सांसारिक ज्ञान–के द्वारा तथ्यों के साथ कल्पना का छोंक व्यक्त किया है। विषय–विशेष से संबंधित विशेषांक की सम्पादकीय के माध्यम से हम जैसे जिज्ञासुओं को बहुत कुछ नवीन, व्यवहारिक, साहित्यिक, सांसारिक, सामाजिक–पारिवारिक, लौकिक ज्ञान उपलब्ध होता है। इस संदर्भ–प्रसंग में 'आदिवासी विशेषांक' के द्वारा आदिवासियों की जीवन शैली की ज्ञानवर्धक झलक मिलती है–

'कभी संध्या के समय जब राजमार्ग के घने जंगलों में प्रवेश करती पगडंडी पर चलते हुए, कहीं ढ़ोल–नगाड़े और मांदर की आवाज प्रभावित करती है और जैसे–जैसे कदम इनके गांव में पहुंचते हैं, तो सामूहिक नृत्य की थाप पर सुमध ुर स्वर को सुनकर मनुष्य चकित रह जाता है, लगता है, सारा संगीत, एवं नृत्य मानव निर्मित न होकर पहाड़ियों एवं जंगल की स्वयं की गई अभिव्यक्ति है, जिसे अभिनन्दन के लिए सारी प्रकृति ही सिमट आई है। आदिवासियों का संगीत एक झरने की तरह कहीं भी फूट पड़ता है। चट्टानों पर उछलता है और नीचे गहराईयों में जाकर गुम हो जाता है। आदिवासी जीवन भी वस्तुतः इसी प्रकार है। उनके जीवन की धारा को बांधा जाये या मोड़ा जाये या नहरीकृत किया जाये तो वह अपने सौन्दर्य को खो बैठता है। जिस तरह बीज से अंकुर निकलता है बाद में पल्लवित, पुष्पित तथा फलित होकर विशाल वृक्ष बन जाता है, यह सारी प्रक्रिया कितनी सहज एवं अयत्नशाधित है, इसमें जल्दबाजी एवं समय से पहले फल पाने की कामना ने मनुष्य को सदैव ही छला है। आदिवासी जीवन अभी भी छलकपट से दूर प्रकृति की गोद में अभावों के बीच भी आनंदित है। पेड़ की शाखा टूटने पर भी अन्य शाखायें हरी एवं फलदायी बनी रहती हैं। ऐसे ही दूरस्थ अंचलों में बसे आदिवासी ठगे जाने पर भी शोक नहीं मनाते, क्योंकि उनकी अमीरियत की सीमा नहीं है।' (समरलोक वर्ष 5 अंक 1 अप्रैल का 2003 पृ. 3–4)

सम्पादकीय कथन में कल्पना, यथार्थ एवं भाषा–सौन्दर्य की त्रिवेणी प्रवाहित हुई है। इस प्रकार के अंश मेहरून्निसा परवेज़ की सम्पादकीय में अनेक आसानी से मिल जाते हैं। कहानीकार–उपन्यासकार होने के कारण इस शैली का प्रयोग सम्पादकीय में होना स्वाभाविक है। इससे सम्पादकीय में चार चांद लग गए हैं।

सम्पादक मेहरून्निसा परवेज़ नारी हैं। वे नारी की समस्या से परिचित हैं। इसीलिये ही उन्होंने कथा–साहित्य में नारी की व्यथा–कथा, दशा को दर्शाया है। नारी की दशा को उन्होंने 'नारी विशेषांक' की सम्पादकीय में बेखौफ प्रकट किया है –

'पुरूष–प्रधान समाज और बाहुबल से संचालित सत्ता की परम्पराओं ने नारी को दूसरे दर्जे पर ढ़केल दिया। उसके अधि ाकार एक बार छीने गये तो दोबारा नहीं लौटाये गये। पुरूष

ने अत्यंत निष्ठुरता और अन्याय पूर्ण व्यवस्था तथा कूटनीति से संचालित किया। नारी एक बार कुव्यवस्था और वीभत्स जटिल ताने–बाने में फंसकर रह गई, तो कभी मुक्त नहीं हो पायी। ..... राजतंत्र और धर्म के निष्ठुर गठबंधन ने नारी को पुरूष की दासी बनाकर रख दिया है।.....कामवासना की पूर्ति के लिये स्त्रियों को दासी बनाकर रखा गया। युद्ध में लड़कर, जीतकर स्त्रियों को एकत्रित कर अपने रानिवासों में भर दिया जाता था। वहीं यज्ञ का पाखण्ड रचकर पाखण्डी दान–दक्षिणा में हजारों पशु तथा दासियों को दान में लेते थे।' (आत्मदृष्टि, सम्पादकीय वर्ष 3 अंक 2 पृ.1)

सम्पादक मेहरून्निसा परवेज़ ने पुरूष द्वारा अमावनीय अस्त्र शस्त्रों से की गई नारी की दुर्दशा को, –तथ्य–सत्य के साथ हृदय विदारक रीति–नीति से उजागर किया है। यह सत्य है पुरूष के पौरूषीय व्यवस्था में नारी को वह स्थान नहीं मिला, जो उसे मिलना चाहिये था। पुरूष ने नारी को भोग्या के रूप में देखा, जिसके कारण उसे घर की चार दीवारी के कारावास से बाहर नहीं निकलने दिया। नारी को खुली सांस नहीं लेने दी। उनकी नारी–विशेषांक की सम्पादकीय नारी के पक्ष को उजागर करती है।

मेहरून्निसा परवेज़ को लोक–जीवन, लोक–पर्व, लोक–संस्कार, लोकगीत के प्रति अत्यधिक लगाव है। इस भावना से प्रेरित उन्होंने पर्वों से संबंधित विशेषांक भी प्रकाशित किये हैं। वे तीज–त्योहार, लोक–संस्कार, लोक–जीवन को जीवन के उल्लास के लिये अनिवार्य मानती हैं, जो आज लोप हो रहे हैं, उन उछलते–कूदते झरनों के समान जो दौड़ धूप आपाधापी की भीषण ऊष्मा से विलुप्त होते जा रहे हैं। त्यौहारों अर्थात् पर्वों पर उन्होंने अपने विचार सम्पादकीय के माध्यम से इस प्रकार व्यक्त किये हैं–

'रोज सूरज निकलता है, दिन निकलता है, रात होती है, पर ईद, दीवाली, क्रिसमस, होली और न्यू–ईयर भी तो रोज नहीं आते। त्योहार आते ही एक अनोखा जुनून खुमारी सी लगने लगती है, कि हर चीज सामान्य होते हुये भी, हर चीज, अनोखी और अनूठी लगती है। वह उमंग किसी भी धन और साधन से ग्रसित नहीं होती। त्योहार की एक और खास बात है कि खुशी की फुहार गरीब तथा अमीर सबको एक साथ सराबोर करती है, कोई भेद नहीं होता, सबको एक सा सुख प्रसन्नता मिलती है।' (समरलोक वर्ष 7 अंक 4 पृ. 4)

पर्व अर्थात् त्योहार जीवन में गति का संचार करते हैं तथा कभी भी छोटे–बड़े, गरीब–अमीर में भेदभाव नहीं करते। उनके आगमन पर झोंपड़ी, घर, महल में आनंद की धारा समान रूप से प्रवाहित होने लगती है। सबके चेहरों पर चमक दिखायी पड़ने लगती है। यह मेल–मिलाप उमंग के प्रतीक हैं, जिसके संबंध में मेहरून्निसा परवेज़ सटीक लिखा है।

युवाओं का राष्ट्र में महत्वपूर्ण स्थान है। वह देश के भावी निर्माता है। देश के योगदान में उनकी महत्वपूर्ण भूमिका होती है। पर आज अर्थात् वर्तमान में देश उनके प्रति चिंतित है। सम्पादक मेहरून्निसा परवेज़ को भी उनके भविष्य और कार्य–शैली के प्रति चिंता है। इस कारण से उन्होंने अभी तक 'युवा–विशेषांक' तीन निकाले हैं; जिनमें सम्पादकीय के द्वारा युवाओं के प्रति अपनी चिंता व्यक्त की है। उनकी चिंता का सम्पादकीय अंश इस प्रकार है–

'आज अनियंत्रित युवा–वर्ग को देखकर धक्का लगता है। जिधर देखो उधर भीड़–ही–भीड़ दिखती है। लोग बेतहाशा भागते ही दिखते हैं। सरकारी दफ्तरों में नौकरी के लिये लम्बी कतारें, पुलिस की भर्ती में मैदानों में लगे मेले की तरह इकट्ठा लोग, किसी नेता की अगवानी के लिये स्टेशन में उत्तेजित जुलूस की शक्ल में जिंदाबाद के नारे लगाते, दंगे करते, तोड़फोड़, लूटपाट में शामिल युवा–वर्ग को देखकर हैरानी होती है।' (आत्मदृष्टि सम्पादकीय समरलोक वर्ष 4 अंक 4 पृ. 3)

सम्पादक मेहरून्निसा परवेज़ ने युवाओं की वर्तमान अस्थिर स्थिति–परिस्थिति पर सही टिप्पणी की है। वर्तमान में युवाओं की यही स्थिति है। अतः उनमें असंतोष, आक्रोश होना स्वाभाविक है, जो उन्हें पथभ्रष्ट कर रहा है।

कलम के सिपाही प्रेमचंद और नयी कविता एवं प्रयोगवाद के प्रवर्तक सच्चिदानंद हीरानन वात्स्यायन 'अज्ञेय' विशेषांकों में सम्पादक मेहरून्निसा परवेज़ ने सम्पादकीय लिखकर, उनका सम्मान किया है। उन्हें भाव विचार के श्रृद्धा–सुमन सादर समर्पित किये हैं। कथाकार प्रेमचंद पर कुछेक विद्वान साहित्यकारों और मनीषियों ने अपने को चर्चा में लाने के लिये उनके व्यक्तिगत जीवन पर कीचड़ उछालने का प्रयास किया है। इसमें उन्हें सफलता भी हासिल हुई है। पर यह सभी जानते हैं सूर्य पर धूल फेंकने पर, सूर्य का प्रकाश समाप्त नहीं हो सकता, वह सदैव ही उतना ही प्रकाशमान रहेगा जितना वह पहले था। इस स्थिति में सम्पादक मेहरून्निसा परवेज़ ने तहेदिल से क़लम के सिपाही प्रेमचंद के पक्ष में सम्पादकीय के द्वारा अपने सटीक विचार बेख़ौफ व्यक्त किये हैं–

'प्रेमचंद जी ने अपने जीवन में कितना संघर्ष किया, फिर भी निरंतर लिखते रहे हैं। आज भी लोग उन्हें कटघरे में खड़ा करते हैं। जीते जी तो सुख मिलता नहीं, मरने के बाद भी लोग विवादों में घसीटते फिरते हैं। शोषित एवं पीड़ितों के दुख–दर्द को गहराई से महसूस करने वाले प्रेमचंद को कार्य का उचित सम्मान नहीं मिल पाया है। प्रेमचंद के पात्र होरी, जोखू, घीसू आज भी हमारे समाज में उपस्थित दिखते हैं

जिन्हें खुद को यह पता नहीं कि उनके दुख–दर्द को समान भाव से महसूस करके लिखने वाला दूसरा प्रेमचंद नहीं जन्मा है। सौ वर्ष पहले प्रेमचंद ने ही साहूकारों और धर्म के ठेकेदारों के शोषण एवं आडम्बर को जिस तरह बेनकाब किया था उसकी दूसरी मिसाल नहीं मिलती।'

इसके आगे लिखा है–

'आज का लेखक समाज से विमुक्त हो रहा है और अपने कुचक्रों की फेरी लगाते दिख रहा है। समाज को लिखने वाले राजनीति की ओर बढ़ गए हैं। लेखक सियासत के दलदल में फंसकर रह गया है, जबकि प्रेमचंद ने अपने मुद्दों पर ध ार्म और राजनीति की आंच कभी आने नहीं दी। वह शुद्ध लेखक ही रहे।' (आत्मदृष्टि समरलोक वर्ष 6 अंक 4, जन–मार्च 2005 पृ. 4)

सम्पादक को बेबाक और मुखर होना चाहिये। बिना भय के लिखना उसका धर्म है, दायित्व एवं कर्तव्य भी। जिसका निर्वहन सम्पादक मेहरून्निसा परवेज़ ने किया है। वह अन्याय से समझौता नहीं करतीं। फलतः प्रेमचंद के लेखन के सद्गुणों को ईमानदारी से व्यक्त कर आज के अवसरवादी रचनाधर्मियों पर उन्होंने कटाक्ष किया है, जो अवसर का लाभ लेकर रचनाएं लिख रहे हैं।

मेहरून्निसा परवेज़ ने सम्पादकीय में नई स्व–निर्मित सूक्तियों का भी प्रचुरता से प्रयोग किया है, जो सायासित नहीं हैं। सूक्तियों में जीवन–दर्शन होता है। सूक्तियां अनन्त–काल तक जीवित रहकर लैंपपोस्ट के समान मानव का पथ प्रदर्शित करती हैं। सामान्य–से–सामान्य जन उनका जब चाहे तक अवसरानुकूल प्रयोग करता है तथा जीवन–पथ को प्रशस्त करता है। ऐसी ही कालजयी सूक्तियां सम्पादक मेहरून्निसा परवेज़ की सम्पादकीय में मिलती हैं– (क) जीवन के जितने नियम बनाते चलिये सब में समय का हस्तक्षेप चिपका रहता है। (ख) समय का अर्थ निर्धारित भाग्य है। (ग) समय एक व्यापक सत्ता है। (आत्मदृष्टि वर्ष 1 अंक 2 समरलोक पृ.3) स्वतंत्रता सतर्कता की कीमत चाहती है। (च) भारत में लोकतंत्र और समानता के दर्शन पर आधारित व्यवस्था के संरक्षण एवं संवर्धन अपनी कीमत चाहते हैं। (छ) लोकतंत्र की धुरी मानव है। (ज) सम्प्रदाय का परचम फैलाने वाले लोग सद्भाव की संभावनाओं को अंकुरित होते ही कुचल देना चाहते हैं।(आत्मदृष्टि वर्ष 1 अंक 3 समरलोक पृ. 3) (झ) जीवन हमेशा अनंत रहस्य तथा हादसों का पेरामिड ही होता है, जिसके भीतर नाना प्रकार के रहस्य छुपे रहते हैं।(आत्मदृष्टि वर्ष 15 अंक 3 समरलोक पृ. 4)

जीवन को दिशा देने वाली अनेक सूक्तियां मेहरून्निसा की सम्पादकीय में हैं, जिससे जीवन की वास्तविकता का बोध होता है। सामान्य और विशिष्ट–जन उनसे ज्ञान प्राप्त कर सकते हैं। इस प्रकाश से मानव जीवन सुखी हो सकता है, साथ ही जीवन मार्ग को आसानी से तय कर सकता है। सम्पादक की सम्पादकीय से सूक्तियां एकत्रित करने पर एक सूक्ति की पुस्तक बन सकती है।

मेहरून्निसा परवेज़ की सम्पादकीय में वर्णनात्मक, विचारात्मक, काव्यात्मक, चित्रात्मक आदि शैलियों का संगम है। यह शैलियां सम्पादकीय को रोचक तथा बोधगम्य बनाती हैं। चित्रात्मक और विचारात्मक शैली के नमूने, भाषा–गठन के सौन्दर्य को व्यक्त करने में सक्षम हैं यथा–

क–चित्रात्मक शैली :– 'सावन की लगातार बारिश नमी के बाद खुला आसमान और चमचमाती पसरी धूप के चितकबरे बिछे कालीन को देखकर कितना सुख और सुकून मिलता है। गरम धूप के सेंक लेने को मन मचलने लगता है।'(समरलोक वर्ष 4, अंक 3, पृ.3)

ख– विचारात्मक शैलीः– 'आज नारी का अस्तित्व भी दुर्लभ पक्षी मैना की तरह क्यूं समाप्त होता जा रहा है। संसार जब से बना है, उसके पीछे जाल क्यों फेंका जाता रहा है? पवित्रता सिद्ध करने के लिये आज भी अग्नि में चढ़े गरम कढ़ाही में तेल में हाथ डालना पड़ता है। जंजीरों में कैद रखा जाता है। बेकरी में भूना जाता है या फिर मंत्री और अफसरों की हवस के कारण मौत की सुरंग में फेंका जाता है। हमेशा उसके गुणों के कारण ही, उसे दुख दिया गया।' (समरलोक वर्ष 6 अंक 1 पृ. 4)

इन अंशों में सम्पादक ने चित्रात्मक और विचारात्मक शैली की गुणवत्ता से सम्पादकीय में चार चांद लगा दिये हैं, जिसे एहसास और महसूस किया जा सकता है।

मेहरून्निसा परवेज़ की सम्पादकीय की भाषा सहज, सरल और बोधगम्य है। इसका निर्माण हिन्दी, उर्दू और अंग्रेजी भाषा के शब्द–विन्यास से हुआ है। इस भाषा को उपमा, रूपक एवं उत्प्रेक्षा अर्थालंकारों ने अलंकृत किया है और मुहावरों के छोंक ने व्यंजक तथा स्वादिष्ट बनाया है। जिसे अस्वाद स्वाद लेकर आनन्दित हो सकता है। यह सच है अलंकारों के योग से भाषा रोचक हुई है, यह सम्पादक की भूमिका का कमाल है।

उल्लेखित विवेचित सम्पादकीय संबंधी, विषय एवं शिल्प संबंधी तथ्यों की सत्यता के आधार पर कह सकते हैं कि मेहरून्निसा परवेज़ की सम्पादकीय में वे सभी गुण एवं विशेषताएं हैं, जो साहित्य–विधा में होती हैं। इन गुण और विशेषताओं के कारण उनकी सम्पादकीय साहित्यिक–विधा की कोटि अर्थात श्रेणी में आती हैं, इसमें दो मत नहीं हैं।

एक मुलाकात : मेहरून्निसा परवेज़ साभार–'आजकल'

'एक मुलाकात' व 'परिचय' श्रृंखला में इस पिछड़े क्षेत्र से जुड़े हुए और क्षेत्र के लिए रचनात्मक योगदान करने वाले व्यक्ति के साथ बातचीत, उनकी रचनाओं की समीक्षा, उनकी रचनाएं और उनके फोटोग्राफ अपने पाठकों के साथ साझा करेंगे।

एक मुलाकात भी खास हो जाती है जब हम उनसे मिलते हैं जो खास होते हैं। हम साहित्य के सुधि पाठकों के लिए भी यह खास मुलाकात है क्योंकि हम मिल रहे उस शख़्सीयत से जो इस दुनिया खुद के होने को साबित करने में न जाने कब से लगा हुआ था और आज साबित भी कर चुका है। हम इस मुलाकात की कड़ी में मिल रहे हैं देश की जानी–मानी कहानीकार, उपन्यासकार, द्विमासिक पत्रिका 'समरलोक' की संपादिका मेहरून्निसा परवेज़ से। वे भोपाल में रहती हैं। उनसे बातचीत कर रहे हैं श्री महावीर अग्रवाल। (साभार–आजकल)

महावीर अग्रवाल– अब तक छपी कहानियों में कौन–सी कहानी आपको अधिक प्रिय है और क्यों ?

मेहरून्निसा परवेज़– मुझे अपनी अधिकांश कहानियां पसंद हैं, यदि मैं कहूं कि सभी कहानियां पसंद हैं तो अतिश्योक्ति नहीं होगी। आप फिर भी नाम ही जानना चाहें तो मुझे अपने परिवेश और बस्तर से जुड़ी कहानियां अधिक प्रिय हैं क्योंकि वहां हमारी संस्कृति के जीवन के साफ–सुथरे, सीधे और सच्चे रूपों के दर्शन होते हैं। कुछ कहानियों के नाम और लिख लीजिए–लौट जाओ बाबू जी, ढहता कुतुबमीनार, ओस से भीगा गुलाब, अयोध्या से वापसी, अम्मां, फाल्गुनी, आदम और हव्वा, रिश्ते कहानियां अलग–अलग पाठकों द्वारा बहुत पसंद की गईं। सैकड़ों पत्र आये जिनमें लिखा गया है कि शोषित और पीड़ित नारी की व्यथा–कथा हमारे मन को छू लेती है। आपकी कहानियों में स्त्री के आंतरिक दर्द की अभिव्यक्ति बहुत गहराई के साथ हुई है।

महावीर अग्रवाल– आपकी पहली कहानी कब और किस पत्रिका में छपी ?

मेहरून्निसा परवेज़– मेरी पहली कहानी 'जंगली हिरनी' तत्कालीन लोकप्रिय साप्ताहिक 'धर्मयुग' में अक्टूबर 1963 में छपी थी। उन्हीं दिनों 1963 में दूसरी कहानी 'पांचवी कब्र' कहानी चर्चित पत्रिका 'नई कहानियां' में छपी थी। उन दिनों पत्रिका के संपादक कमलेश्वर थे। इसके बाद साप्ताहिक हिन्दुस्तान और सारिका में कहानी लगातार छपती रही। देश की अधिकांश महत्वपूर्ण पत्रिकाओं में कहानियां तब से अभी तक निरंतर छपती रही हैं।

महावीर अग्रवाल– आप कहानियां क्यों लिखती हैं ?

मेहरून्निसा परवेज़– मुझे लगता है, दबे–कुचले लोगों की व्यथा को, उनके दुख–दर्द को शब्द देने के लिए ही मेरा जन्म हुआ है, इसलिए कहानियां लिखती हूं। जीवित पात्रों की संघर्ष गाथा को इसलिए लिखती हूं ताकि उनको न्याय मिल सके। स्त्री के दर्द को मैंने अपने लेखन का आधार बनाया। मैंने अपने आसपास की शोषित और पीड़ित नारी को देखा। नसीमा, तहमीना और बूंदाजान ये सारे स्त्री पात्र मेरे खानदान या उसके आसपास के ही हैं। ठोकर इन्हें लगती थी पर चोट का दर्द मैं महसूस करती थी। रोती–कलपती नारी के आंसू पोंछे हैं मैंने।

महावीर अग्रवाल– कहानियों में कथ्य और कलात्मक संतुलन की कोई सीमा तय होनी चाहिए या कहानी कथ्य प्रदान होनी चाहिए ?

मेहरून्निसा परवेज़– कहानी में कथावस्तु को मैं महत्वपूर्ण मानती हूं। इसका यह अर्थ भी नहीं लगाया जाना चाहिए कि शिल्प को कम महत्व दिया जाए। कथ्य बहुत शानदार हो और उसकी प्रस्तुति भी मन को छू लेने वाली हो तभी कहानी बहुत दूर तक पहुंच पाती है। मेरी लिखी कहानियों पर घर में जब भी विवाद होता तो घर–परिवार में तूफान आने के बाद जैसी शांति छा जाती। जीवन के आंगन में देखे, पहचाने और परखे हुए पात्रों पर ही मुझे हमेशा कथ्य मिलता रहा है। उनकी अनुभूति की अनुगूंज मुझे विचलित करती है और मैं कहानी लिखने लगती हूं। मैं पात्र के आसपास के वातावरण में तथा उसकी खुरदरी ज़मीन पर घिसटकर, उसकी मानसिकता के साथ डूबकर शिल्प को एक नया रूप देती रही हूं।

महावीर अग्रवाल– कहानी की भाषा के संबंध में आपके विचार ?

मेहरून्निसा परवेज़– भाषा हमेशा कहानी की संरचना और विषय–वस्तु के अनुरूप ही होनी चाहिए। अपने आसपास की दुनिया और पात्र की स्थिति को पठनीय कहानी बनाती है भाषा। कहानी में जितनी भी स्थितियां होती हैं, मोड़ आते हैं उसमें भाषा का चुटीलापन और करूणा की अपनी अलग–अलग भूमिका होती है। कहानी में जिस प्रकृति के पात्र होते हैं, उसी के अनुरूप भाषा रची जानी चाहिए तभी कहानी के चरित्र प्राणवान होकर बोलने लगते हैं।

महावीर अग्रवाल– क्या लेखन के कारण आपको व्यक्तिगत जीवन में कभी संघर्ष का सामना करना पड़ा ?

मेहरून्निसा परवेज़– मैंने जब लेखक बनना तय किया तो जिन्दगी के उबड़–खाबड़ रास्ते में ढेर सारे अवरोध आये। रास्ते के कंकड़–पत्थरों ने पैरों को लहुलुहान किया लेकिन मैंने रास्ता नहीं बदला और आगे चलती रही। पहली कहानी 'जंगली हिरणी' तत्कालीन लोकप्रिय धर्मयुग में अक्टूबर 1963 में जब छपी तब घर में सभी ने मना किया था। परन्तु मेंरे पिता जज थे। उनके सामने एक अपराधी की तरह मेरी पेशी

हुई। मैं अपना मार्ग चुन चुकी थी। मैं घर से दूर लेकिन दूसरों अर्थात् पाठकों के निकट पहुंचती गई। यश, प्रसिद्धि, यातना और प्रताड़ना उसी तरह मिलने लगी जैसे फूल के साथ कांटे मिलते हैं। घटनाएं न जाने कितनी हैं ? एक बताती हूं–हमारे एक पड़ोसी परिवार में बचपन से मेरा आना–जाना था। उसी को आधार बनाकर मैंने 'फाल्गुनी' कहानी लिखी। घर–परिवार, मोहल्ले से लेकर थाने तक उस घर की कथा पर चर्चा होने लगी। उस स्त्री का मेरी मां के पास खूब आना–जाना था। सन 1970 के आसपास मैंने उस पर 'फाल्गुनी' कहानी लिखी तो हंगामा मच गया। बहुत विरोध हुआ। उस स्त्री के पति के दाह–संस्कार में हमारा पूरा परिवार उपस्थित था। मेरे अब्बा से ही उन्होंने अपना अंतिम संस्कार मंझले बेटे से कराने की इच्छा व्यक्त की थी। इस कथा को सारा शहर पहले से जानता था पर कहता नहीं था। मैंने खूब ढांप–ढांपकर लिखा, उसके बाद भी उन्होंने मामले में मुकदमें की धमकी तक दी। उस परिवार से हमारी दुश्मनी हो गई। ऐसे ही मेरे उपन्यास 'उसका घर' पर विरोध हुआ। मेरे लेखन पर रोज़ाना कचहरी बैठती, मेरी पेशी होती, मुझे अपराधी किया जाता। अंत में फ़ैसला सुनाया जाता 'इसका कहानी लेखन बंद करवाया जाए'। अपने कहानी लिखने के अपराध के कारण मुझे ध ीरे–धीरे अकेले रहना पड़ा। अम्मी–अब्बा मुझे समझा–समझाकर थक जाते। लोग मुझे बदनाम करते और मुझसे दूर भी भागते।

महावीर अग्रवाल– आप किन कथाकारों से अधिक प्रभावित रही हैं ?

मेहरून्निसा परवेज़– प्रभाव तो समग्रता में होता है। सच तो है कि जब मेरी पहली कहानी 'जंगली हिरनी' तत्कालीन लोकप्रिय साप्ताहिक धर्मयुग में अक्टूबर 1963 में छपी, उस समय नाइन्थ क्लास में पढ़ रही थी और 14–15 वर्ष की उस उम्र तक मैं किसी बड़े या स्थापित कहानीकार से प्रभावित नहीं थी क्योंकि मैंने अधिक कहानियां पढ़ी ही नहीं थीं, तो प्रभावित कैसे होती ? मेरे ऊपर अपने आसपास के पात्रों का ही प्रभाव सबसे अधिक पड़ता रहा है। दस–बीस कहानियां छप जाने के बाद कहानीकारों को मैंने पढ़ना प्रारंभ किया। कहानियां पढ़ते हुए प्रेमचंद, आचार्य चतुरसेन शास्त्री, आशापूर्णा देवी, अमृतलाल नागर और मोहन राकेश की कहानियां मुझे अधिक अच्छी लगती रहीं। दूसरी बात जब मैंने लिखना शुरू किया तब सौभाग्य से बहुत अच्छे संपादकों का दौर था। संपादकों की चर्चा अवश्य करना चाहूंगी। अपने समय के ही नहीं हिन्दी साहित्य में बड़े और महत्वपूर्ण संपादकों में इनकी गणना होती है–कमलेश्वर, धर्मवीर भारती, भीष्म साहनी, मनोहर श्याम जोशी, अवधनारायण मुद्गल। ये सभी केवल संपादक ही नहीं थे, हिन्दी के बड़े रचनाकार भी थे, सभी से मैं प्रभावित रही।

महावीर अग्रवाल– नए कहानीकारों के विषय में कुछ बताएं ?

मेहरून्निसा परवेज़– नई पीढ़ी में जो भी कहानीकार आए हैं, वे बहुत कमाल की कहानियां लिख रहे हैं। नया शिल्प और नए तरह के कथ्य में कहानी की बुनावट देखते ही बनती है।

महावीर अग्रवाल– क्या रचनाकार के लिए वैचारिक प्रतिबद्धता का होना आवश्यक है ? यदि हां तो क्यों ?

मेहरून्निसा परवेज़– प्रतिबद्धता होनी चाहिए लेकिन किसी एक विचार या विचारधारा के प्रति न होकर समूची मानव जाति के लिए होनी चाहिए। लेखन के लिए विचार का आडम्बर मैंने नहीं रचा। मैंने जीवन –भर मजदूर की तरह रोज़ाना लेखन –कार्य किया। पाबंदी से समय बांधकर लिखती रही। मिट्टी के चूल्हे के पास बैठकर खाना बनाते समय लिखा, चिल्ल–पों और घर के शोर के बीच लिखा, बच्चे को दूध पिलाते में लिखा है। इसे आप साहित्य के प्रति मेरी प्रतिबद्धता मान सकते हैं।

महावीर अग्रवाल– कहानी के साथ–साथ और किस विधा में लिखना आपको अच्छा लगता है ?

मेहरून्निसा परवेज़– साप्ताहिक रविवार और नई दुनिया दैनिक में मैंने नियमित स्तंभ लिखे हैं। अभी तक मेरे छह उपन्यास प्रकाशित हो चुके हैं। संस्मरण और सामाजिक समस्याओं पर लेख भी समय–समय पर लिखती रही हूं। मेरी लंबी कहानी 'जूठन' और 'सोने का बेसर' पर धारावाहिक बनकर प्रसारित हो चुके हैं।

महावीर अग्रवाल– रूस और फ्रांस की क्रांति के समान ही आज की बदलती हुई परिस्थितियों में लेखन द्वारा सामाजिक, वैचारिक और क्रांतिकारी परिवर्तन संभव है या नहीं ?

मेहरून्निसा परवेज़– क्रांतिकारी परिवर्तन रूस और फ्रांस की तरह होगा या नहीं, मैं नहीं जानती, लेकिन सकारात्मक और सार्थक समाज के निर्माण के लिए मैं हमेशा प्रयत्नशील रहती हूं। विद्युत चलित संचार माध्यमों में दूरदर्शन, फैक्स आदि क्षेत्रों में लगातार परिवर्तन हो रहे हैं। अंतर्राष्ट्रीय सम्मेलनों एवं गोष्ठियों में महिलाएं पूर्णतः मुखरित होकर अपने अधिकारों की बात कर रही हैं। यह भी परिवर्तन का तरीका ही है। वैचारिक क्रांति को यदि सीमित अर्थों में न बांध ा जाए तो मैंने टेलीफिल्म के माध्यम से यह काम करने की कोशिश की है। वेश्यावृत्ति जैसे सामाजिक अभिशाप पर स्वयं की टेलीफिल्म 'लाजो बिटिया' 1997 में बनाई और निर्देशन किया। इसी क्रम में स्वतंत्रता संग्राम पर आधारित लोकप्रिय धारावाहिक 'वीरांगना रानी अवंतीबाई' का निर्माण एवं निर्देशन

1998 में मेरे द्वारा किया गया।

महावीर अग्रवाल– रचनाकार के लिए सामाजिक दायित्व का बोध बहुत जरूरी माना जाता है। सांप्रादायिक दंगों की आग बुझाने में लेखक को अपनी भूमिका किस रूप में अदा करनी चाहिए ?

मेहरून्निसा परवेज़– ज़रूरत पड़ने पर घर–घर जाकर दंगों की आग को बुझाने की कोशिश करनी चाहिए। मैं सन 1995 में बरारे शरीफ़ में हिंसा के समय पर 'गांधी शांति मिशन' के साथ सांप्रदायिक शांति का संदेश लेकर कश्मीर गई थी। इसके साथ ही साथ समय–समय पर कमजोर वर्ग में उनकी चेतना को बढ़ाया तथा सरकार एवं सामाजिक संगठनों से वांछित सहयोग देने के लिए प्रेरित किया। बस्तर के आदिवासी तथा बांछड़ा जाति की लड़कियों का उनके ही परिवार द्वारा शोषण देखकर दंग रह गई थी। वहां से निकालकर उन्हें आश्रम में रखा और उनका विवाह भी कराया।

महावीर अग्रवाल– कहानी की आलोचना पर अपने विचार बताइए ?

मेहरून्निसा परवेज़– आलोचना पर कुछ नहीं कहना ही अधिक उचित प्रतीत होता है। आलोचकों के नाराज हो जाने का डर तो लगता ही है परन्तु सच तो सच ही रहता है। सबके अपने–अपने ख़ेमे और गुट हैं। भारतीय आलोचना में मेरा अनुभव यह कहता है कि अपने इर्द–गिर्द के मित्रों पर ही आलोचक अधिक लिखते रहे हैं। अपने ही दोस्तों की चर्चा में इतने मशगूल रहते हैं कि दूसरे कहानीकारों तक उनकी नज़र या तो पहुंच ही नहीं पाती और यदि पहुंच गई तो जान–बूझकर टाल जाते हैं। यह जरूर कहूंगी कि भारतीय पाठक बहुत अच्छे हैं। उनके फोन और चिट्ठियों से नए से नए कहानीकार का हौसला बढ़ते हुए मैंने देखा है।●

लघुकथा

दूध का कर्ज

कृष्ण चन्द्र महादेविया
अधीक्षक
विकास कार्यालय पधर
जिला मण्डी
हि. प्र. 175012
मो.– 8679156455

'मां..... आज मैं आपके पिए दूध के ऋण से उऋण हो गया हूं। आज आपके दूध का कर्ज मैंने उतार दिया है।' विपुल ने आदर से किन्तु सगर्व अपनी माता को नयी कोठी में प्रवेश कराते कहा। बचपन में मां से किए वादे के अनुसार उसने अपनी माता के लिए कोठी भेंट की थी।

विशाल और सुन्दर कोठी को देख माता बहुत खुश थी। किन्तु बेटे के शब्दों से आती दर्प की गन्ध और स्नेह की मात्रा कम महसूस कर वह थोड़ा गम्भीर होकर बोली– ' विपुल बेटे, मैं तो धार की धूप हूं, तुम्हारी बनवायी हवेली पर कब तक जिन्दा रह पाऊंगी। .....पर बेटा, जब तुम डेढ़ वर्ष के थे और मैं विधवा औरत सर्दी की भयानक मूसलाधार वर्षा आंधी तूफान में अकेले तुम्हें गोदी में उठाए रात भर जर्जर मकान के द्वार पर खड़े–खड़े ठिठुरते पूरी रात बिताई थी। बेटा, यह कोठी तो उस एक रात की कीमत भर भी नहीं है। मां के दूध का कर्ज तो कोई भी बेटा कभी क्या चुका पाएगा !!''

विपुल जैसे पहाड़ से गिरा। उसके मुख से विनम्रता से निकला– ''मां.....!!''

मां ने उसके सिर पर स्नेह से हाथ रखा तो उसकी आंखों में आंसू उमड़ पड़े थे।●

काव्य

शक्ति स्वरूपा बेटियां

श्रीमती शैल दुबे
दुबे बाड़ा
पावर हाउस चौक
जगदलपुर
पिन–494001
मो.–9584003436

शक्ति स्वरूपा वजूद तुम्हारा
नई सदी ने अब स्वीकारा।
दो ही फूल से महके आंगन,
दोनों बने अब कुल का तारा।
बेटी नहीं बेटे से कुछ कम,
फर्ज नहीं ऐसा कोई, जो कर न सके बेटे के सम।
पर आती है जब ब्याह की बारी
बेटियां सब पर पड़ती हैं भारी।
वधु नहीं नाबालिग कन्या,
फिर क्यों होता 'कन्यादान'।
यहीं है बेटी–बेटे का अंतर, वधु नहीं है बोझ किसी पर
नहीं किसी पर है आश्रित।
नहीं अब कन्यादान दहेज के
आडम्बर से हो श्रापित।
वधु अब उस वर का वरण करो,
जो 'मोल–भाव' बिन ब्याहेगा।
दान का देकर अभयदान
वरदान स्वयं बन जायेगा।
मंगलगान लगे तब प्यारा
शक्ति स्वरूपा वजूद तुम्हारा।●

कोरजा

सिविल लाइन। डामर रोड के किनारे दूर से बने बंगलों में नसीमा आपा का मकान ढूंढ़ने में कोई परेशानी नहीं हुई, क्योंकि शादी की तामझाम दूर से ही देखी जा सकती थी। बंगले के सामने शामियाना लग रहा था, रंग–बिरंगी झंडियों से बंगले को सजाया जा रहा था, सामने मैदान की घास छीली जा रही थी, याने पूरी तरह से शादी की तैयारियां हो रही थीं। रिक्शा लकड़ी के टूटे गेट के सामने रुका। गेंद खेलते बच्चे दौड़कर रिक्शे के करीब आ गए, और देखने लगे। नसीमा ने रिक्शेवाले को पैसा देते हुए बच्चों से पूछा, ''क्यों, यही है न रिजवी साहब का बंगला ?'' ''जी हां, यही है, पर आप किसके यहां जाएंगी ? क्योंकि वह पुलिस चौकी के बाजू मोड़ पर बना बंगला रिजवी कप्तान का है,'' बच्चों के झुण्ड में से सब से चुस्त व चालाक दिखनेवाले लड़के ने कहा, ''नहीं, वहां नहीं, मुझे डिप्टी कलेक्टर रिजवी के यहां जाना है।'' नसीमा ने मुस्कराते हुए लड़के से पूछा–''तुम्हारा नाम क्या है, कहां रहते हो ?''

''रिजवान अहमद, मेरा यही घर है। रिजवी साहब का बेटा हूं।''

''तो तुम आपा के बेटे हो ?'' नसीमा ने प्रसन्नता से कहा। बरामदे की सीढ़ीयां उतरकर नीचे आते आपा दिखीं, उन्होंने बैंगनी फूलोंवाली साड़ी पहन रखी थी, पैरों में हरी पट्टेवाली रबर की स्लीपर थी। शरीर से आपा भारी हो गई थीं पर खूबसूरत अभी भी कम नहीं लग रही थीं।

''अरे नसीमा, आओ, यह बच्चों ने तुम्हें घेर रखा है ! रिजवान यह नसीमा आण्टी हैं। चलो, सामान चटपट कमरे में पहुंचाओ'', आपा ने बच्चों को काम सौंपते तथा नसीमा को गले से लगाते हुए कहा। बच्चों ने रिक्शे पर रक्खा सामान तेजी से उठाकर रिक्शे को खाली कर दिया, जैसे बन्दर की टोली आंगन में ककड़ी की बेल पर टूट पड़ी हो और यह जा वह जा !..

''रन्नो की शादी हो रही है, मुबारक हो आपा, अब तुम वाकई सास–जैसी लगने भी लगी हो !''

''और तू ? तू तो अभी भी वही छोटी सी नसीमा लगती है जिसकी शलवार हमेशा ऊंची हो जाया करती थी, और नंगे टखने दिखाते घूमती रहती थी, है न।'' आपा ने हंसते हुए कहा। वह दोनों एक–दूसरे का हाथ थामे अंदर की ओर बढ़ीं, बच्चों ने फुरती से सामान कमरे में रख दिया था तथा नसीमा के आने का ऐलान भी कर दिया था। बाहर से आए अजीब मेहमान–रिश्तेदार कमरे में जमा हो गए थे, और कुछ औरतें परदा उठा–उठाकर उत्सुकता से इधर झांक रही थीं।

''ले, तू तो शायद किसी को पहचानती नहीं होगी, मैं परिचय करा देती हूं–यह खाला हैं यह...'' आपा शुरू हो चुकी थीं। नसीमा सब को सलाम कर रही थी साथ ही सब की ओर मुस्करा–मुस्कराकर देख भी रही थी। लंबी यात्रा की थकान और आते ही लंबे–लंबे परिचय से थकावट और बढ़ रही थी। ''रन्नो की शादी न होती तो शायद तू आती भी नहीं–है न ?'' आपा ने उसे सोफे पर बैठाते हुए कहा और फिर रिजवान से बोलीं–''जा, बुआ से कहना–जल्दी चाय और नाश्ता भेजे।''

''आपा, मैं रहती भी तो कितनी दूर हूं...रिश्तेदारों को मैं भूल गई या रिश्तेदार मुझे भूल गए ? मैं तो फिर भी आ जाती हूं आप लोग तो कभी भूले से याद भी नहीं करते, ईद पर ईद–कार्ड ही डाल दिया करो न !''

''भई, तुमसे बातों में कौन जीत सकता है ?'' चाय शायद बनकर पहले से तैयार थी या रिजवान का पहले से हुक्म चल चुका था, क्योंकि तुरंत चाय आ गई। गरम–गरम चाय मिल जाए इससे बड़ी बात नसीमा के लिए दूसरी नहीं है। नसीमा चाय पी रही थी, आंखें नीचे झुकी हुई थीं कि आंखों के आगे पीली–पट्टी की स्लीपर में फंसे, हल्दी रंग के गरारे में, हल्दी की रंगत लिये पैर आ खड़े हुए। नसीमा ने फिर उठाकर देखा। हल्दी में डुबोकर रंगे गए गरारे–कुरते और बारीक क्रोशिया की मख्खी बनी ओढ़नी में कोई सामने खड़ा था, पल–भर को नसीमा चकरा गई। लगा–आपा एक बार फिर जवान होकर सामने आ गई हैं। वही–सब–कुछ वही ! वही नाक–नक्शा, वही रंगत, और चेहरे के वही भाव।

''रन्नो है'', आपा ने उसे हैरान देखकर कहा, ''और रन्नो, यही है नसीमा आंटी।'' रन्नो करीब आ गई और उसने उठकर हल्दी की सोंधी और पवित्र खुशबू में बसी उस लड़की को जल्दी से लिपटा लिया।

''आपा, लगता है एक साथ दो जन्म लिखाकर लाई हो ! रन्नो को देख तुम्हें अपनी याद नहीं आती–क्यों ?'' रन्नो झेंपकर मुस्करा दी, आपा उदास होकर कहीं खो–सी गईं।

रन्नो के यौवन को नसीमा अपनी आंख में भर लेना चाहती थी। पतली गोरी–गोरी कलाइयां, लंबी आंखें, छोटी–सी ठोड़ी, गोल–सा चेहरा...। नसीमा को कुछ काटने लगा। सोचा नहीं था कि समय इतनी जल्दी वैसी ही रंगत वैसी है खुशबू लिये पलटता है ! रन्नो को शाम का चिकसा (हल्दी) लगाने का समय हो गया था क्योंकि दो लड़कियां उसे बुलाने

आईं। वह उठकर उनके साथ चली गई।

''एहसान भाई ? तुम्हें याद है आपा, मैं तुम्हें कितना परेशान करती थी न !'' आपा चौंक गईं। नसीमा ने जानबूझकर सुई चुभोया था, यह देखने के लिए कि इस भरे हुए गुब्बारे में अभी हवा बची है या नहीं। वह इस चुभन से सिसक उठीं।

''चुप ! पुरानी बातों को उधेड़ती है !''

''यहां कोई दूसरा तो है नहीं, अगर सुन भी ले तो क्या समझेगा ? बताओ न कहां हैं वह ?''

''पता नहीं नसीमा, एक बार उनकी खाला का लड़का, तुझे फटी हाफपैंट पहने रफीक की याद तो है न ?–वही अब मेडिकल रिप्रेजेंटेटिव हो गया है। एक बार यहां भी पहुंच गया। उसे देख मैं तुरंत पहचान गई, वही चेहरा। कोई फर्क नहीं। काफी देर बैठा काफी बोलता रहा, पर मैं चुप उसे देखती रही। मुझसे बोला ही नहीं जा रहा था, उसी ने बताया कि एहसान रायपुर में है। शादी कर लिया है दो बेटे हैं। उसी ने रफीक को मेरा पता बताया था और सलाम भी भेजा था।'' आपा बोलते–बोलते थोड़ा रुकीं, जैसे सांस ली हो, ''बड़ा अजीब लगा, इतने दिनों बाद, जबकि मैं सब भूलकर अपनी गृहस्थी में लग गई, तब अचानक उससे कुछ पूछा, वह अपने–आप बोलता गया था।''

''आपा, मोहब्बत कभी मरती तो नहीं, बल्कि उसकी खुशबू बाद में और तेज होकर आती है।''

''हां, वह दिन कुछ और ही थे नसीमा, अजीब उतावली, बेसब्री से भरे दिन ! अब उन्हें याद करने से क्या फायदा ?'' आपा ठंडी सांस खींचते बोली, ''अच्छा, छोड़ इन बेकार की बातों को–अब अपनी कह, जमीर मियां कैसे हैं ?'' आपा ने नसीमा को पुरानी बातों से खींचते हुए कहा।

अब तक कमरे में अंधेरा हो गया था, बातों में कुछ पता नहीं चला। आपा ने उठकर खट्ट से ट्यूब लाइट जला दिया। झक ! तेज रोशनी में एक–दूसरे को देख वह दोनों चौंक पड़ी, जैसे आंखें चकाचौंध हो गई हों।

कमरे में कुछ लड़कियां निहारी सजा रही थीं। दरी पर उबली सेवइयों से भरे बड़े–बड़े शीन रखे हुए थे। उन्हें पान के पत्ते से बराबर करके लड़कियां तरह–तरह के रंगीन फूल बना रही थीं। शेर लिख रही थीं। हर लड़की एक–एक शीन पर अपना हुनर उड़ेल रही थी। उभरती उम्र का शोर कमरे में भरा था। आपस में हंसी–मजाक भी चल रहा था। नसीमा एक तरफ बैठ गई और ध्यान से उसके हुनर को सहराती हुई दृष्टि से देखने लगी।

''आप पान की गिलौरी में चांदी के बर्क लगा दीजिए न'', एक लड़की ने–जो खुद दूल्हे के नए सूट में इत्र लगा रही थी नसीमा को बेकार बैठे देख काम सौंपा। तभी आपा कमरे में आईं, ''नसीमा तुझे भी निहारी में जाना है, जल्दी से तैयार हो जा बस, बैंडवाले आ रहे हैं, औरतें कारों में जाएंगी।''

''आपा निहारी में इन लड़कियों को जाने दो, वहां मैं जाकर बोर हो जाऊंगी।''

''क्यों, तू क्या बूढ़ी हो गई ?''

''पर शादीशुदा तो हूं !''

''ओफ्फोह् ! अब नखरे न दिखा। चल, दूल्हे को ही देख आना।''

''दामाद दिखाने को बड़ी बेचैन हो आपा ? भई इतनी बेताबी तो हमने अपने दूल्हे भाई को भी देखने में नहीं की।'' नसीमा ने शरारत से कहा, ''बड़ी नटखट है'', आपा झेंप गई। ''तुमने अपने पानदान का वह मशहूर पान अपने हाथों अभी तक मुझे नहीं खिलाया जिसके लिए एहसान भाई दीवाने...'' आपा ने पूरा वाक्य बोलने के पहले ही नसीमा को जल्दी से वहां से उठा दिया। नसीमा ने अपने को उस कमरे से बाहर जाने के लिए ही यह बहाना खोजा था, क्योंकि नसीमा ने महसूस कर लिया था कि उसके आने से आपस में ठिठोली करती शोख लड़कियां एकाएक चुप हो गई थीं। आपा के कमरे में आकर गद्देदार तख्त पर नसीमा लेट सी गई। आपा ने पानदान खींचा, इधर वह पान ज्यादा खाने लगी थीं, साथ में तंबाकू भी।

''तुमने यह शादी अपनी पसंद से तय की या रन्नो की पसंद से ?''

''रन्नो की पसंद है। दोनों एक–दूसरे को पसंद करते हैं। अब यह पहले–सा वक्त तो रहा नहीं नसीमा, जब प्यार को घरवालों से छिपाकर करना पड़ता था, जबान से निकलता तक नहीं था कि हम फलां से प्यार करते हैं। जहां मां–बाप ने रिश्ता तै कर दिया, बस वहीं चले आए।'' आपा ने पान की गिलोरी नसीमा को दी और खुद भी एक मुंह में रखकर बोलीं, ''वक्त बदल गया है नसीमा, उसके साथ–साथ सब बदल गया है।''

''तुम्हें पुरानी बातें याद हैं आपा ?'' नसीमा ने पूछा।

''सब याद है नसीमा, पर अब वह कच्ची उम्र भी तो नहीं रही। अब तो गृहस्थी की झंझटें निपटाते ही वक्त निकल जाता है। पुरानी यादों के लिए किसे फुरसत है ?'' आपा ने ठंडी सांस ली, ''रन्नो की शादी के बाद तो अब मुझ पर और भी जवाबदारियां होंगी। आज सास बन रही हूं कल नानी बन जाऊंगी। बस। औरत इन्हीं रिश्तों की भंवर में ही तो गुम हो

कर रह जाती है...खो जाती है।''

''अरे हां, मैं भी कैसी भुलक्कड़ हूं'' आप थोड़ी देर चुप रहकर दोबारा बोलीं, ''तेरा सब से परिचय कराया पर असली लोगों से मिलाना ही भूल गई। दरअसल वह लोग पिक्चर चले गए थे, थोड़ी देर पहले ही आए हैं।'' आपा उठीं और दूसरे कमरे में चली गईं। नसीमा हैरान थी कि कौन से लोगों से मिलाना आपा भूल गई थीं ? थोड़ी देर में लौटीं तो उनके साथ तीन जवान लड़के थे। ''नसीमा, पहचान तो यह कौन हैं ?'' आपा उसे और हैरान करती बोलीं। नसीमा को परेशान देख आखिर आपा खुद ही बोलीं, ''जानती है रफीक, शफीक और यह छोटा मुन्नू है, पहचाना ?'' नसीमा को जैसे करेंट छू गया। आंखें डबडबा गईं। सच यही ऊंचे–ऊंचे जवान चेहरे क्या बरसों पहले के रफीक, शफीक और मुन्नू हैं ? फटे चिथड़े पहने, दो टाइम के खाने को तरसते क्या वही हैं यह ?

''रफीक, तुझे तो शायद नसीमा की याद्दाश्त होगी। तू हमेशा नसीमा के साथ करेले तोड़ने जाता था न ?'' आपा ने रफीक से कहा। रफीक ने हां में सिर हिलाया और नसीमा के पास चला आया, शफीक को भी थोड़ी–थोड़ी याद थी। नसीमा के खुशी और पीड़ा के मारे आंसू निकल पड़े। ''जानती है नसीमा, रफीक ने जगदलपुर में बहुत बड़ी दरजी की दुकान खोल ली है। कई नौकर रख लिये हैं। दस–पंद्रह मशीनें हैं इसकी दुकान पर। सब से बड़ी दुकान है जगदलपुर में इसकी।''

''सच !'' और नसीमा ने प्यार से तीनों को समेट लिया, ''साजो खाला कहां है आपा आजकल ?''

''ओह !–साजो खाला अब इस दुनिया में कहां है नसीमा ? नानी के मरने के बाद थोड़े ही दिनों में साजो खाला को टाइफाइड हो गया था। बाद में वह संभल न पाई, उनके दोनों पैर बैकार हो गए थे। घसीट–घसीटकर चलती थी। एक बार मैं मिलने जगदलपुर गई थी तो मुझे देख रोने लगी। कहती थी–गुनाहों की सजा खुदा ने मुझे दी है रब्बो। पर वह गुनाह क्या मैंने अकेले, अपने लिए किए थे ?''

''सच है आपा, साजो खाला ने जो भी गुनाह किए उनमें हम सब शामिल थे। हम सब के लिए किये थे उन्होंने।'' ''गुनाह'', नसीमा ने कहा, ''आज मैं सोचती हूं आपा, तो बड़ा अजीब–सा लगता है क्या उन दिनों बिखरे–छितरे लोग ही नानी के घर पनाह ढूंढ़ने आ जाते थे ? नानी के उस पुराने, गरीब से घर में कितनी मजबूर जिंदगियां सांस ले रही थीं। अपने में दूसरों के इतिहास को समेटकर रखवाली करती थीं नानी।''

उस शाम इकट्ठे बैठे कितनी–कितनी स्मृतियों को साथ जी लिया था सब ने। कितने बीते हुए जख्मों को सहलाया था। रन्नो की शादी में कब के बिछड़े हुए लोग फिर एक बार आ मिले थे, पर अब सब–कुछ कितना बदल गया था। कितना अजीब है–इंसान वहीं रहते हैं, पर यादों पर जिंदगी के पहरे लग जाते हैं और जिंदगी अपने ढंग से इंसान को कहां से कहां ढकेल देती है। रन्नो, आपा, नसीमा, रफीक, शफीक और मुन्नू सब ने अपने–अपने ढंग से याद किया था बीते हुए कल को। सब इकट्ठे एक छत के नीचे रह चुके थे, पर आज इतने बरसों बाद कितना अजनबीपन महसूस हो रहा था। बाहर मंडप में दहेज सजा हुआ था। नीले चूड़ीदार पैजामेवाला सूट पहने एक लड़की कागज पेन लिये लिस्ट बना रही थी। घर की दो–तीन नौकरानियां दहेज के आस–पास खड़ी पहरा दे रही थीं।

रेशम, जर्र, मखमल की चमक–दमक लिये दुल्हन के जोड़े सजे थे। शानदार चमकता नया पलंग, पलंग पर खूबसूरत मखमल का बिस्तर और रंगीन गोटे टंकी मसकरी, महीन चुन्नटों से भरी दुलाई, झल–झल चमकचे स्टील और कांच के डिनर–सेट, टी–सेट और दीगर सामान का अंबार था, नई पॉलिश की सोंधी महक लिए फर्नीचर था। और बेहद उत्सुक, ईर्ष्यालु कई–कई हजार आंखें थीं।... जुलवे की रस्म अभी–अभी हुई थी। दूल्ला–दुल्हन को नए बिस्तर पर बैठाया गया था। इसलिए चादर कसमसा सी गई थी। दुल्हन और दूल्हे के सेहरे के ताजा फूल कहीं–कहीं टपक गए थे, और अपने होने का एहसास दिला रहे थे। अंदर कमरे में अभी फिर रस्म चल रही थी। दूध और सेवइयां दोनों को खिलाया जा रहा था। नई–नई मेंहदी की खुशबू से बसे हाथों से दुल्हन को दूल्हे को सेवाइयां खिलाना था और दुल्हन की कुंआरी उंगलियों को काटते–छीनते हुए दूल्हे को लूटकर खाना था। इस रस्म में दुल्हन का साथ उसकी बहनें या चाचियां देती हैं, वही दुल्हन के हाथ को पकड़े रहती हैं। जब दूल्हे मियां खाने झपटते हैं, झट दुल्हन का हाथ पीछे खींच लिया जाता है। इसी तरह छका–छकाकर दूल्हे को सात या पांच निवाले खिलाये जाते हैं। दूल्हे की पारी के वक्त तो बस दूल्हे के हर निवाले को उसके होंठों तक ले जाकर छुआना होता है।

यह रस्म है तो छोटी पर नई उम्र की लड़कियों के लिए बड़ी ही मजेदार होती है। वही दुल्हा– दुल्हन को घेरे शोर करती खड़ी रहती हैं। चुस्त पिंडलियों पर कैसे रंग–बिरंगे

पैजामे, महीन चुन्नटों और जरी की गोट से सजे गरारे–सरारे। प्याजी, नीले सुर्ख, गुलाबी, बैंगनी शिफॉन और टेरलीन की ओढ़नियां जिन पर मुकेश, सलमे–सितारे और जरी की खूबसूरत लेस से टंके, इत्र में बसाए गए दुपट्टे, जवान शरीर और जवान दिख रहे थे। तरह–तरह के जेवर–गुलुबंद चंपावली, वैजंतीमाला और हार, नेकलेस, चेन। और न जाने क्या–क्या जेवर की चमक थी। चूड़ियों और कंगन की आवाज अलग पहचानी जा सकती थी। कुंआरी मुस्कराहटें और ठहाके घर की दीवारों तक को कंपा रहे थे।

नसीमा दिन–भर सिर्फ काम की देख–रेख में चहलकदमी करती हुई ही काफी थक गई थी। चेहरा उदास–उदास थकान की वजह से लग रहा था। जी चाह रहा था कब यह हंगामा खत्म हो और अपने कमरे में जाकर बैठ जी–भरकर बातें कर ले पर अभी कहां फुरसत होने वाली थी, अभी तो नौ बज रहे थे और विदाई होते–होते एक बजने वाला था। बाहर मरदाने में डिनर चल रहा था। बिरयानी, कोरमा, मुर्ग–मुसल्लम, सींककबाब, कलिया दही का रायता, बरकी–पराठे, शाही टुकड़े, आलू का हलवा और न जाने क्या–क्या, एक–से–एक खाने की खुशबू से सारा आसपास का वातावरण महक रहा था। ड्रम के पास अपने चिकने–चिकने हाथ धोती और टावेल से पोंछते हुए लोग दिख रहे थे। कमरों और मंडप में औरतें ही औरतें भरी थीं। बच्चे मुंह में पान के बीड़े ठूंसे, बीच–बीच में हो रहे थे, आज इन्हें न कोई रोकनेवाला था न टोकनेवाला, आज तो इन्हीं का राज था। फूलों की क्यारियों को हाथ ध ोा–धोकर उजड्ड किस्म के मेहमानों ने खराब कर दिया था, शादी के घर से महकते फूलों की गंध, एक–से–एक बढ़िया खानों की गंध, नई–नई साड़ियों की गंध, तरह–तरह के सेंट–इत्र, मीठे पान, जवान और बूढ़े शरीरों की पसीने की गंध ा का बोझ उठाये हवा धीरे–धीरे रंगीन झंडियों को छू–छूकर शैतानी से भाग रही थी।

रन्नो को पुरानी तथा बूढ़ी औरतों ने रुला–रुलाकर काफी हलकान कर दिया था। फर्श पर कालीन बिछा था, जिस पर दूल्हा–दुल्हन को बिठाया गया था। एक कटोरी में संदल रखा था और एक बड़ी सी स्टील की थाली में रुपए बढ़ते जा रहे थे। जो भी औरत संदल लगाने आती रन्नो के गले में हाथ डालकर रोने लगती। नसीमा की इच्छा हो रही थी कि एक–एक को डांटकर भगा दे, पर साहस नहीं हुआ। दूल्हे मियां मुंह पर रुमाल रखे काफी व्याकुल से हो रहे थे, शायद रन्नो की हालत उनसे भी देखी नहीं जा रही थी। अशफाक भाई याने रन्नो के अब्बा और आपा के शौहर आए और बेटी का हाथ अपने समधी के हाथ में सौंपने लगे तब तो माहौल और रंजीदा हो उठा, औरतें ऊंचे स्वर में रोने लगीं। काफी देर तक यह रस्म चली, याने पहले अशफाक भाई ने बेटी सौंपी फिर आपा ने रोते हुए अपनी समधिन को बेटी सौंपी।

काफी देर बाद जब माहौल का घुटा–घुटापन खत्म हुआ तथा रन्नो की सास थाली में पड़े रुपयों को गिनने लगी तब रन्नो ने नसीमा की ओर मुंह किया, ''आंटी मुझे बाथरूम ले चलो।'' नसीमा ने खड़े होकर धीरे से उसे सहारा देकर खड़ा किया। उसके लाल गोटे और सलमा–सितारों की गंगा–जमना से झलमलाते महजर को चारों ओर से समेटकर उसके हाथ में पकड़ा दिया, और उसके फर्शी गरारे को थोड़ा ऊपर उठाकर मेहंदी–रचे पैरों में लाल मखमल की जर्रदार मोती–टंकी जूतियां पहना दीं।

बाथरूम के पास आकर रन्नो ने जल्दी से महजर निकाल दिया, वह बहुत बेचैन सी लग रही थी। ''आंटी अंदर आकर दरवाजा लगा लो।'' नसीमा ने अंदर से बाथरूम का दरवाजा लगा लिया। रन्नो जल्दी से नीचे बैठकर उल्टी करने लगी। नसीमा आश्चर्य में भरी जल्दी से महजर को स्टैंड पर रख उसकी ओर बढ़ी। रन्नो एक हाथ से नसीमा को पकड़े, बहुत बेचैन होकर उल्टी करने लगी। नसीमा उसकी पीठ सहलाती रही। थोड़ी देर बाद निढाल–सी उठी और नसीमा के कंधे पर आ गिरी। नसीमा हड़बड़ाकर उसके भारी शरीर को संभाले रही।

अचेत रन्नो को जब नसीमा ने बड़ी ही मुश्किल से लाकर पलंग पर लिटाया तो कमरे में कोई नहीं था, सब बाहर मंडप में थे। नसीमा ने मन–ही–मन खुदा को धन्यवाद दिया। नसीमा ने फैन फुल स्पीड में खोल दिया। लाल गोटे–टंके रेशमी जोड़े में और जड़ाऊ गहने, नाक में बड़ी–सी सरजे की नथ पहने रन्नो परी लग रही थी। उसे बेहद नूर खुला था।

''क्या हुआ, इतनी देर कैसे लगा दी ?'' आपा इसी तरफ लपककर आती हुई बोलीं। ''आपा, इसे गश आ गया है, थोड़ा संभल जाने दो।'' आपा के चेहरे पर कई रंग आए, कई रंग गए, फिर वह नसीमा के करीब आ गई और उसका हाथ दबाते हुए बोली, ''नस्सो इसे दिन चढ़े हैं, दोनों एकदम खुलकर साथ रहते थे। मेरी ही जिद पर यह शादी जल्दी हो रही है, वरना, यह दोनों को तो कोई चिंता नहीं थी, क्या जमाना आ गया है !...'' आपा ने बहुत दिनों बाद नसीमा को अपने उसी पुराने नाम से पुकारा था जो बहुत पहले, जब आपा कुंआरी थी तब पुकारती थी। रन्नो की इस अवस्था की जानकारी से नसीमा को कुछ खरोंच गया। कुछ उधड़–सा गया, और जाने क्यों पुरानी बातें एक–एक कर उसे याद आने लगी थीं। ●

पासंग

दर्द की चितेरी पद्मश्री मेहरून्निसा परवेज़ जी का अद्भुत उपन्यास है 'पासंग'

अनीता सक्सेना
बी–143
न्यू मीनाल रेसीडेंसी
भोपाल – 23
संपर्क : 9424402456

''पासंग यानि की तराजू के दो पल्लों का एक बराबर वजन करने के लिए लगाई गई एक छोटी सी वजन की पोटली जो कि तराजू की डंडी के एक कोने पर बंधी होती है और तराजू के दोनों पल्लों के बीच संतुलन बनाये रखती है।

इस पासंग के बिना तराजू बेकार है, ना ही उससे सही वजन लिया जा सकता है ना ही उस पर एतबार किया जा सकता है, एक नन्हीं सी पासंग उस तराजू के लिए अनमोल होती है।''

पासंग उपन्यास की दादी यानी बुलाकी बेगम जिनके बेटे, बहू और पति ने उनका साथ छोड़ दिया लेकिन नन्हीं कनी पासंग बनकर उनके जीवन में आई और नन्हें से पासंग के सहारे अपनी जिन्दगी के सुख–दुःख काट लिए।

मेहरून्निसा जी का यह अद्भुत – अद्वितीय उपन्यास है ! आपने इस उपन्यास में बस्तर के आदिवासियों, उनके जीवन, त्योहार, दिनचर्चा, उनके वन–उपवन, खेती, शादी–विवाह, संस्कार हर एक के बारे में गहन जानकारी दी है। आपकी पैनी नज़र चींटियों की चटनी, मुर्गियों की दिलचस्प बातें, गौसू दादा का मुर्गा और उसकी लड़ाई, तीज–त्यौहार, एक मध्यवर्गीय परिवार, स्वाभिमानी दादी, मासूम कनी, समझदार कुलसुम और दर्द में डूबी बानो आपा हर एक पर रही है! दर्द के कारण हंसी का भी इतना सुन्दर खाका खींचा है कि पढ़ते–पढ़ते कई बार पाठक मुस्कराने लगता है और कई बार आंखें नम हो उठती हैं! पूरा उपन्यास आंखों के सामने से गुजरता है, इसे हम पढ़ते कम और देखते ज्यादा हैं!

बुलाकी बेगम की सराय का पूरा नक्शा आंखों के सामने दिखता है, आगे के बंद कमरे फिर अम्मा का कमरा, पीछे दादी का कमरा, आंगन जिसमें मुर्गियों के दड़बे हैं, दीवारों पर मोखे हैं, पीछे सीताफल, इमली और आम के पेड़ का बगीचा, घर के बगल से गुजरती तंग संकरी गली सारा कुछ दिमाग में ऐसे बैठ जाता है कि लगता है कि हम भी कभी वहां गए हैं!

लेखिका के शब्दों में 'संसार में कुछ भी तो नहीं बदलता, सब कुछ वैसा ही रहता है, वही धरती, वही आकाश, वही पहाड़, पेड़–पौधे, नदी–नाले मोहल्ले, शहर सब वैसे के वैसे ही रहते हैं लेकिन सिर्फ एक घटना से सारा का सारा ज्योग्रफिया बदल जाता है, लोगों के देखने का तरीका बदल जाता है उनकी नजर बदल जाती है, विचित्र गणित है ना ये !! ये घूमती पृथ्वी ही सब कुछ बदल देती है, ना स्वयं रूकती ना किसी को रूकने देती है ! धूल की परतें उड़ती हैं फिर जम जाती हैं, जमी धूल कभी उड़ कर, कभी जम कर, बहुत कुछ याद दिलाने लगती है, बीती बातों की फुसफुसाहटें होती हैं जो हवा में तैर–तैर हमें किसी के हमारे पास होने का अहसास कराती रहती है और पासंग की नन्हीं पोटली की जगह पाठक स्वयं इस कथा में बंध जाता हे, जो कलसुम को देख अपना बचपन याद करता है, वो गलियों में दौड़ना कच्ची अमिया तोड़ कर लाना और नमक के साथ खाना, नमक में उबले बेर और गुड़ में उबले बेर, कलसुम और कनी की गुड़िया–गुड्डे की शादी, उसकी तैयारी, गहनों का वर्णन, शादी और उसके बाद झट से विदा करा ले जाने की अकुलाहट, इन सब में डूब कर पाठक किसी और लोक में पहुंच जाता है।

एक–एक चीज को बारीकी से देखा है आपने! छोटी सी बात का विस्तृत वर्णन अद्भुत है। जैसे गौसू दादा का मुर्गे की कहानी, देवगुड़ी का वर्णन, गदली पूजा, महावीर का चढ़ावा, पंचम लगना और नज़र उतारना, तीन ऊले के चूल्हे का वर्णन, चक्की का गेंहूं पीसना, पीतल के गुंड में रूपये छुपा कर रखना, चावल की अनेक किस्मों के बारे में जानकारी, और बेहद रोचक धान का शगुन साथ ही अरबी महीने की तेरह तारीख और जुम्मा का वर्णन!

बस्तर और बस्तर के आदिवासियों के जीवन के प्रति आप ज्ञान अद्भुत है, बातों–बातों में दादी से ज्ञानवर्धक कई कहानियां सुना दी हैं जैसे भीष्म पितामह की कहानी, नूरजहां जहांगीर की कहानी, टिटहरी की कहानी, राजा प्रवीरचंद की कहानी, शमशुद्दीन की कहानी, अकबर के जन्म की कहानी और चना जोर गरम वाला गीत आदि ! जैनब दादी और दादी की बातों में दो बहनों के प्यार का ख़जाना है, दोनों बहनें जब भी मिलतीं हैं, पुरानी यादों में खो जातीं हैं, यह खज़ाना अनमोल है और उस खज़ाने के जरिये आपने अपने पाठकों को, ढेरों संग्रहणीय जानकारी दे दी है ! मुझे विश्वास है कि, ये ज़माना आपके ज्ञान के इस खजाने को जानेगा ! दादी से आपने जो जानकारी दिलाई है काबिले तारीफ है जैसे कुछ

और कुएं के साफ़ पानी का संबंध, मैना को हल्दी की गोली खिलाना, केंचुए की मिट्टी से सांप के काटे का इलाज, चींटी की चटनी और बस्तर, तगारी–रंगदारी और पगारी, शाही हुक्मरानों द्वारा तेज गति से डाक कैसे पहुंचाते थे आदि !

''इतिहास कभी लिखा नहीं जाता, हमेशा लिखाया जाता है! उचित और अपने मतलब की बातें लिखवाई जाती हैं अनुचित बातें दबा दी जाती हैं! जनमानस तो मूक साक्षी होता है घटाने–बढ़ाने का काम तो बड़े लोग करते हैं!'' आपने एकदम सही कहा! इतिहास के कच्चे दस्तावेजों में बानो आपा के प्यार– त्याग को दबा दिया गया! उचित– अनुचित का फैसला दूसरों ने किया! बानो आपा का किरदार मन–मस्तिष्क को झकझोर देता है, क्या कसूर था उनका ? क्या खुदा की क़यामत के पहले परिवार और समाज ने क़यामत नहीं ढाई थी उन पर ? हज़ार शिकवे, ज़िल्लतें और कष्ट सह कर वह उस बच्चे के लिए जी रही थीं, कुकून के रेशम की तरह अपने चारों तरफ़ जिंदगी लपेट रही थीं क्या गुनाह था उनका यह कहना कि ''किसी का दोष नहीं हैं, मेरी किस्मत में यह उलट–फेर की कथा लिखी थी, कहते हैं ना कि जब इन्सान का बुरा वक्त आता है तो उसके पहले ही काल उसकी मति हर लेता है! जैसे सर्चलाईट की रौशनी के पड़ते ही खरगोश ठिठका–सहमा रह जाता है, वह सोचता है कि रास्ता ख़त्म हो गया। मगर ऐसा नहीं होता, रास्ते तो बहुत होते हैं उसकी अपनी बुद्धि काम नहीं करती ! मेरे साथ भी ऐसा ही हुआ ! मेरे पास भी रास्ते थे पर मैं खुद ही ठिठक कर रह गई ! मेरी बुद्धि तो मेरे काल ने हर ली थी, अपनो को अपना अधिकार दे कर मैं खुद ही ठगी गई !'' दिल को छूता है ! छठी की पूजा का महत्व और छठी की पूजा का मार्मिक वर्णन है जिस को पढ़ कर दिल रो उठता है !

पासंग में जिन्दगी की गहराई है, कुछ वाक्य जो जिंदगी का सार हैं :–

''इन्सान और ज़मीन दोनों की खोज़–खबर ना ली जाये तो दोनों पड़िया हो जाते हैं, बंजर हो जाते हैं !''

''गलत बातों का, गलत लोगों का साथ कभी नहीं देना चाहिए, ऐसे लोग कच्ची रोकड़ होते हैं, जरा झटका लगा और कच्ची सिलाई उधड़ गई !''

''धर्म आस्था के लिए होता है, व्यवस्था के लिए नहीं।''

''जरा सी खरपतवार सारी ज़मीन, फसल को खा जाती है।''

''नदी में उतार–चढाव कम होते हैं, भंवर भी कम होती हैं, मगर जिंदगी में तो ढेरों उतार –चढाव हैं और भंवर ही भंवर हैं।''

''नेकी और वदी तो अल्लाहमियां की तराजू के दो पलड़े हैं।''

''दर्द का रिश्ता नजदीक का होता है, अपने–आप एक दूसरे से तार जुड़ जाते हैं।''

''हंसी–खुशी को बटोरने के लिए तो लोगों का झुंड होता है लेकिन दुःख तो अकेले काटना पड़ता है! अपने दुःख, घाव – टीसों की वेदना कष्ट तो स्वयं को सहना पड़ता है! समय एक ऐसा वैद्य है, रफूगर है जो जिंदगी के बड़े घाव और उधड़ी सीवन को सिल देता है ! पैबंद लगा कर रफू कर देता है ! बड़े वृक्ष अब आंधियों में गिरते हैं तो अकेले नहीं गिरते उनके साथ ढेर सारे छोटे–बड़े पौधे और ढेर सारी ज़मीन भी निकल कर बाहर आ जाती है।''

''पानी देखो, जब नदी के किनारों की आड़ में बंधा रहता है तो सीधा चलता है ! ये किनारे ही तो हमारी खानदानी आबरू होते हैं, हमारी मर्यादा होते हैं पर जिस दिन ये टूटे या तूफ़ान आ कर किनारे तोड़ दे तो देखो पानी कैसा तबाही में बदल जाता है।''

''ज़मीन–जायदाद का हिसाब तो पटवारी के खाते में मिल सकता था पर कितनों के दिलों की बस्तियां बर्बाद हुईं, कितनों के अरमानों के महल ढह गए उसका हिसाब किसी पटवारी के खाते में नहीं था।''

''इन्सान को जब अपनी जान की पड़ी होती है वह सब को भूल जाता है, अल्लाह, भगवान, मन्दिर–मस्जिद सब भूल जाता है ! मन में जब सुकून होता है तभी मन में धार्मिक आस्था ज्यादा बढ़ती है।''

''तीनों के बीच मौन था पर वाणी से वाचाल था।''

''सुख के रंग बेशक अलग–अलग होते हैं पर दुःख के रंग–भाव सबके हमेशा एक जैसे होते हैं।''

''दुःख तो सबको मिलता हैं पर समझदार और अच्छे लोगों को उसका एहसास अधिक होता है।''

''खुदा हर सुन्दर चीज को इतनी तकलीफ क्यूं देता है ? या तो सुन्दरता ना देता या तकलीफ ना देता, गुलाब को देखो, फूलों का राजा है, उसे देखते ही हर इंसान का दिल उसे तोड़ने के लिए मचल जाता है, फिर भले ही उसकी पंखुड़ियां पैरों के नीचे कुचल दी जाएं उससे उसका कोई वास्ता नहीं !''

''दादी कहती हैं कि घर के पशु–पक्षियों को घर के हर सुख–दुःख की आहट होती है ! हवा से भी वह सब सूंघ लेते हैं ! हवा में प्रसन्नता होती हैं तो वह खुश हो कर चहचहाते हैं ! गोरैया चिड़िया घर की आबादी वाले घरों में ही बसेरा डालती है, सूने घरों में उल्लू और चमगादड़े रहती हैं।''

''दादी ठीक कहती हैं – अफीम के खेत के किनारे भी अगर इन्सान बैठा रहे तब भी उसे अफीम का नशा चढ़ जाता है ! हवा में तैरता है अफीम का नशा।''

''हर घाव सूख कर कितना छोटा हो जाता है।''

''जिस खेत की माटी उसी खेत में जमती है, गेंहू के खेत में धान नहीं होता और न ही धान के खेत में गेंहू।''

''दूसरों की जिन्दगी में धतूरे के बीज बोने वाले लोग देखे हैं।''

''जिस बरस बांस में फूल आता हैं और बेर खूब फलती है उस बरस ''भूमकाल'' आता है।''

छोटी–छोटी लोकोक्तियों का भी बड़ा सुन्दर समावेश है पासंग में :–

''घर के देव ललाएं, बाहर पत्थर पूजन जाएं''

''के हंसा मोती चुगे, के लंघन ही मर जाए''

''बोले मोर फूले कांसा, अब वर्षा की नहीं है आशा''

''कांटा बुरा करील का, औ बदरी की घाम, सौत बुरी है चून की, और साझे का काम''

''तिरया तेल, हमीर हठ, चढ़े ना दूजी बार''

''तीन बार बुलाने को बुलौआ, चलौआ और टिरौआ कहते हैं''

''दूर गड़ासा दूरे पानी, नियर गड़ासा नियरे पानी''

मेहरून्निसा जी ने अपने उपन्यास में महिलाओं की स्थिति का सदैव ही बड़ा सजीव और मार्मिक चित्रण किया है, एक बालिका के शैशव काल से उसके बुजुर्ग हो जाने तक के उसके संघर्ष, उसकी उत्पीड़न, उसकी बेचारगी, विवशता, लाचारी सभी को दिल को छू जाने वाले शब्दों में व्यक्त किया है! मां की महत्ता को भी बताया है कि पहले बच्चे को मां के नाम से ही जाना जाता था, गान्धारी पुत्र, कुंती पुत्र, सौमित्र, कैकई पुत्र आदि ! मां के दूध का क़र्ज़ उतारना, जब तक मां का नाम ना लो, फातिहा पूरी नहीं होती, मां के पैर के नीचे जन्नत है आदि बातें बताते हुए कनी की दादी का वर्णन जो कि धैर्य की साक्षात् प्रतिमूर्ति हैं, उनके पास ज्ञान का भंडार है, कनी नाम के तिनके के सहारे उन्होंने अपनी जिन्दगी काटी ! ढहती हवेली को बचने के लिए वह स्वयं एक स्तंभ बन कर खड़ीं रहीं और स्वयं के जर्जर शरीर के होते हुए भी कनी के सामने किले की मजबूत दीवार की तरह तनी रहीं, और यह दीवार ढही भी तो कब ? जब कनी की जिद के आगे उसकी अम्मी उस हवेली में आई, जिस हवेली को वह वर्षों पहले छोड़ गईं थीं और जिसके दरवाजे उनके लिए हमेशा–हमेशा के लिए बंद हो गये थे उस हवेली में उन्होंने कनी के लिए कदम रखा लेकिन मालकिन से सामना ना कर सकीं, एक खुद्दार, स्वाभिमानी दादी अम्मा जिस शान से बुलाकी बेगम कर उस हवेली में आईं थीं उस ही शान से उन्होंने उस हवेली से विदा ली ! ज़माने की एक उंगली भी उन्होंने अपने जीते जी उस हवेली की शान में और अपने ऊपर नहीं उठने दी !

दादी के लिए कनी खुदा की एक नियामत थी, उस के सहारे उन्होंने अपनी वीरान जिन्दगी काटी थी, उसे वह वर्षा की पहली बड़ी बूंदें ''दादौरा'' कहती थीं। और कनी को भी लगता था कि सुख और दुःख का एहसास दादी के दुपट्टे के दो छोर की तरह थे जो एक साथ दाएं – बाएं लटकते थे ! और अंत में दादी कनी से कहती हैं ''तू ही तो मेरी जिन्दगी की पासंग है, जिन्दगी की तराजू के दोनों पल्ले सुख और दुःख तुझसे ही तो जुड़े थे! दुनियादारी निभाना इतना आसान नहीं होता ! अपनी छवि ऐसी बनानी होती है कि लोग डरें वर्ना सीधे इन्सान के सर पर तो कौआ चील–तक बैठ कर बीट करें ! जीवन भी एक युद्ध है, यहां राजा का जिन्दा रहना बहुत जरूरी होता है, वरना दूसरा राजा कब्ज़ा कर लेता है ! सेना खुद नहीं लड़ती, राजा के बल पर लड़ती है ! यह जिन्दगी के ताने–बाने हैं इनके सहारे, इनकी आड़ में हम बेहिचक सुरक्षित बने रहते हैं! कनी, मेरी बच्ची, मेरे सूखे मरूस्थल जीवन में बरसी तू पहली दादौरा की वर्षा थी!''

पासंग अतुलनीय है, जिसने इसको नहीं पढ़ा, उसने जिंदगी को नहीं पढ़ा ! ●

महाप्रभु किरपा करा (हल्बी)

श्री हेमंत बघेल
छत्रपति शिवाजी
वार्ड–35
तेतरकुटीपारा
जगदलपुर (बस्तर)
मो.–09098932187

भूखे पेट रहुन
पेज पसिया खाउन
बेटा के पढ़ाले।
महाप्रभु (सरकार)
बले संग दिला
पढ़तो काजे किताब
पेज बेरा भात
किन्दतो काजे बूट
अउर कुड़ता दिला
अउर समया ने पैसा बले।
बेटा पढ़ो बलुन
बेड़ा बाटे एकला जाए
कितरी दण्ड पावले बले
नांगर–फार नी धराये।
उधार मांगुन दिया–तेल
बेटा के रात भर पढ़ायें।
महाप्रभु फेर किरपा करला
बारहवीं पास होतोके
बेटा के दस हजार दीला।
महाप्रभु
अन्दाय मय थकले
केश जमाय पाकली
इतरो करलास
खिण्डिक अउर करा
बेटा के
गोटोक नौकरी दिया
मांतर मोचो
फुटथ किस्मत
चार साल हो ली
बेटा चो घरे बसलो
नांगर–फार
कांई के नी जाने
फोकहा बसलो से घरे
फिन्दतो काजे लुंगी नहीं
फूलपेन्ट मांगेसे अन्दाय।
हे महाप्रभु किरपा करा।

महाप्रभु कृपा करें (हिन्दी)

भूखे पेट रहकर
पानी पीकर
बेटे को पढ़ाया।
महाप्रभु (सरकार)
ने भी साथ दिया
पढ़ने को किताब
दोपहर को मध्यान्ह भोजन
पहनने को जूते
और कपड़े दिये
और समय पर छात्रवृत्ति भी
बेटा पढ़े
इसलिए खेतों में अकेला जाता
कितना भी कष्ट पालूं
बेटे से हल–बैल न चलवाता
उधार मांग कर तेल
बेटे को रातभर पढ़ाया
महाप्रभु ने फिर कृपा की
बारहवीं पास होते ही
बेटे को दस हजार दिया
महाप्रभु
अब मैं थक गया हूं
बाल भी सफेद हो गये
इतना किया है
थोड़ा और कीजिए
बेटे को
एक नौकरी दे दीजिए
मगर मेरी
फूटी किस्मत
चार साल हो गये
बेटे को घर बैठे
हल–बैल
कुछ नहीं जानता
बेकार घर में पड़ा रहता है
पहनने को लुंगी नहीं
पेंट मांग रहा है अब
हे महाप्रभु कृपा करें।

पारदर्शी शंख

श्रीमती रजनी साहू
एम.एस.सी.(रसायन)
बी–501कल्पवृक्ष को.हा.
सोसायटी, सेक्टर–9,
खांदा, न्यू पनवेल (वे)
मुम्बई, महाराष्ट्र
मो.–09892096034

मैं बेडरूम की खिड़की की तरफ लेट कर आकाश के तारे देख रही थी। शीतल हवा चल रही थी ऐसा लग रहा था कि वह कोई धुन गुनगुना रही है। मेरी आंख कब लग गयी पता ही नहीं लगा। मैंने देखा, मैं एक समुद्र के नीले जल में तैर रही हूं। तैरते–तैरते मैं उसकी अथाह गहराई में पहुंच गई। वहां कितने सुन्दर रंग–बिरंगे जलचर दिखाई दिये। बहुत सुखद दृश्य था।

तभी मैंने वहां एक पारदर्शी शंख देखा, उसमें गुलाबी रंग का जल था। सुन्दर बुलबुले उठते नजर आ रहे थे। उसे देखते ही मुझे अपने पास रखने का मन हुआ। मैंने धीरे से उसकी ओर हाथ बढ़ाया। तभी अचानक एक आवाज गूंजी– ये शंख तभी उठाना, जब तुममें साहस हो इसका जल उन सभी व्यक्तियों पर डालो जो अमानवीय, अनैतिक, दुराचारी हैं। उससे उनकी बुद्धि में परिवर्तन हो जायेगा। वो अपनी दुष्टता छोड़ देंगे। मुझे लगा जैसे मेरे जीवन का उद्देश्य भी यही है। मैंने तुरंत उस शंख को उठा लिया। तभी मेरी नींद उचट गयी और मेरा सपना टूट गया।

काश मेरा सपना सच होता। काश ऐसा कोई पारदर्शी, गुलाबी जल वाला शंख होता।

जल बिन मछली

नेहा एक घरेलु औरत है जिसका पति अर्पित सोचता है कि घरेलु औरत अस्तित्वहीन होती है और दिमाग भी नहीं होता है। अर्पित, नेहा का शोषण करना ही जानता था बस। धरती का बोझ, नालायक की उपाधियों से नवाजता था।

नेहा भी क्या करे, भगवान के प्रसाद की तरह मजबूरी में झेल रही थी। क्योंकि प्रसाद कड़वा भी हो तब भी फेंका तो नहीं जा सकता। भाग्य में यही लिखा है मानकर बच्चों की परवरिश में दिन काटती थी।

घर के कामों से फुर्सत मिलती तो नेहा सोचती कि उसका पति अर्पित सोलह–सत्रह साल अपनी मां के पास था फिर छात्रावास में उसने पढ़ाई करी। शादी के बाद बीस साल से वही तो उसे उसकी मां से ज्यादा अच्छी तरह से पाल रही है। सुख–दुख, हर वक्त प्राण न्योछावर करने को तैयार रहती है। मरते दम तक जैसा भी है मेरा पति है, मैं हमेशा उसके साथ हूं–फिर भी अर्पित को मेरे इस समर्पण का कोई मोल समझ नहीं आता है ?

बस्तर के लोकप्रिय गायक थे स्व. मेघनाथ पटनायक

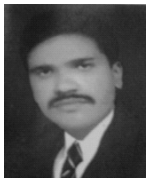

शिवशंकर कुटारे
ग्राम व
पोस्ट–लौहण्डीगुड़ा
जिला–बस्तर (छ.ग.)
मो.– 9406294695

जुहार जुहार गणेश देवता....., जय दुर्गा जय हो शरण शरण दुर्गा माय....., मण्डई दखुक लाय जांवा रे भोजली...., ये हल्बी गीत आकाशवाणी के जगदलपुर केन्द्र से सर्व प्रथम सन 1977 में प्रसारित हुए, जिसे गाया था अंचल के लोकप्रिय गायक मेघनाथ पटनायक ने। इनके द्वारा गाए हल्बी गीत रेडियो में लगातार बजने लगे जिसे बस्तर के श्रोताओं ने बेहद पसंद किया था।

दुर्गा वंदना के रचनाकार स्व. गणेश प्रसाद सामन्त थे जिन्होंने दुर्गा जी के साथ बस्तर अंचल के देवी देवताओं का स्मरण किया है। दखा दखा हो मचो बस्तर भूंई के....., गीत सन 1978 में प्रसारित हुआ था। इस गीत में मेघनाथ पटनायक ने बस्तर भूमि का गुणगान किया है। वे सन 1980, 81 एवं 82 में आकाशवाणी केन्द्र के वार्षिक आयोजन एवं अन्य अवसर पर गीत गाकर श्रोताओं का मनोरंजन करते रहे। आया मचो दंतेश्वरी, बुआ भैरम आय, भाई दण्डकार, बहिन इन्द्रावती, सुन्दर मचो, तुमके सरन आय..., यह गीत बस्तर की आराध्य देवी मां दन्तेश्वरी जी को समर्पित था जो उन दिनों रेडियो में बजा करता था। उन्होंने अंचल की जीवन दायिनी नदी इन्द्रावती, चित्रकोट जल प्रपात एवं बैलाडीला कारखाने की महिमा का गुणगान अपने हल्बी लोक गीतों के माध्यम से किया था– झर झर झरना बहे इन्द्रावती बस्तर चो रानी रे... .., बैलाडीला चो कारखाना, रसीया चितर कोटी, मचो राज ने सपाय आसे, आय बस्तर माटी...।

लोक गायक ने बताया था कि उनके द्वारा गाये गीत– काय रसिया उदीगला जोन उदीया....., सन 1984 में आकाशवाणी के दिल्ली केन्द्र से लोक संगीत कार्यक्रम मे प्रसारित किया गया था तथा इस गीत के केसेट आकाशवाणी के जगदलपुर केन्द्र से लोक संगीत मेला में आस्ट्रेलिया भेजा गया था।

मेघनाथ पटनायक को बस्तर की धरती, देवी देवताओं, लोक संस्कृति एवं यहां की प्रकृति से गहन प्रेम था जिसे उन्होंने गीतों के माध्यम से व्यक्त किया है। उन्होंने विभिन्न सार्वजनिक मंचो में भी बस्तर के लोक गीत गाए थे। उनके गीत माधुर्यता से परिपूर्ण थे। गीत गाने की प्रेरणा उन्हें उनके बड़े भाई राधाकृष्ण से मिली थी जो गायक थे। वे जीवन पर्यन्त गीत गाते रहे। उनके सह गायक हेमलता देवांगन, चंचला अधिकारी, पार्वती बघेल, विजयलक्ष्मी दानी, गौरीशंकर पटनायक, सुन्दर लाल नायक आदि थे। उनके द्वारा गाये गए सदाबहार गीत हमेशा याद किए जाएंगे। स्व. मेघनाथ पटनायक आंचलिक गीतकार होने के साथ साथ बस्तर लोक संस्कृति के लोकप्रिय चित्रकार भी थे। विश्व प्रसिद्ध बस्तर दशहरा लोक उत्सव के स्वागत द्वार पर उनके द्वारा आकर्षक चित्रकारी की जाती थी जिसमें बस्तर अंचल के लोक संस्कृति की झलक परिलक्षित हुआ करती थी। ●

काव्य

झेंपता हुआ

सुनीता दमयंती,
26ए/1बी झील
रोड़, सलीमपुर
कोलकाता
पिन–700031

हर रात के बाद जागता है सूरज
ठंड के धुंधलके में
अंगार सा जलता–बुझता,
अंधेरी रात से हुयी हार पर
खिसियाया, शर्माया ...
पहाड़ के बर्फीले आईने में
दिखायी देती है उसकी पहली झलक,
"स्लीपिंग बुद्ध" भी हो जाते हैं लाल
लेटी देह में झलकने लगती है यशोधरा !
पुरुष सूर्य की दृष्टि होती है आकृष्ट !
किरणों के आलोक में अपलक निहारने लगते हैं सौन्दर्य
उस आकृति का
स्वर्णिम प्रपात में नहा उठते हैं पहाड़ ।
अस्त–व्यस्त सी सोयी धरती
जाग कर लेती है अंगड़ाई ...
सूर्य को निकट देख ढांपती है
हरियाले आंचल से अपना उन्मुक्त यौवन ।
सूरज ठिठकता है, उलझा हुआ
समझता है अपनी भूल
पल भर को झेंपता हुआ
चल देता है अपनी राह ...
चिड़ियों के संगीत में
मन्द सुगन्धित हवाओं में
झरनों की पायल में
जंगलों की गूंज में / और
यूकेलिप्टस की फुनगी पर
अपनी छाप छोड़ता हुआ। ●

काव्य–मातृत्व का उपकार

रामनारायन मीना 'मित्र'
ग्राम व पोस्ट–कांट,
वाया–अचरोल
तहसील–आमेर
जिला–जयपुर
पिन–303002 राज.
मो.–08800994228

यूं तो आज भी हम
भारतीय संस्कृति का बिम्ब
मातृत्व के
आइने में खोजते हैं ।
शिरोमणि उक्ति
'यत्र नार्यस्तु पूजयन्ते,
रमन्ते तत्र देवता'
के नाम पर दम भरते हैं ।
मूल्यों की अरथी सजाकर
मेरे घर से जनाज़ा निकला है,
आदर्शों के होली दहन में
हाथ न ताप
कल तुम्हारे शहर की बारी है,
मोहल्ले में भीड़ जुटी है
सरेआम
किसी औरत की अस्मत लूटी है,
मन्त्री जी ने उद्घोष किया
राजकोष से सहायता राशि दी जायेगी,
मात्र तुम ही नहीं हो
उजले चांद का भी तो मुंह काला ही है ।
राजधानी के राजमार्गों पर
गांव की वक्र पगडंडियों पर
राजमहलों के झरोखों से
तृणधारित आवासों तक
सर्वत्र
कानों में
खौलता शीशा घोलता सा
देहोपासक
महादानव के उच्च अट्टहास से
लाखों भय–भासित
पीत बदन 'निर्भया'(बालायें)
अपने तन रक्षण की सोच में विकल है।
सड़कों–गलियों में
नारी देह की सुवास से आसक्त
घ्राणशक्ति सम्पन्न
अनेक उन्नत नासिकाएं
एक ही लिबास में
चमचमाते कठोर जूतों की
भयावह खट–खट से
क्रमिक कदमताल करती है
मानव बस्तियों को घूरती
कामित बाज–दृष्टि
तीखे–पैंने
नाखूनी पंजों में दबोचकर,
गदराये तिरिया तन से
गहगहाती मादकता की
निश्शेष बूंद को भी
पी जाने की लालसा में
सतत् मण्डराती है ।
सत्ता की नाक की परछायी में
निश्चिन्त
जरा ओझल का ढोंग करती हुई सी
अंगारे उगलती
तप्त लाल आंखों वाली
रक्तलिप्त
मुड़ी हुई नुकीली गिद्ध चोंच
उनके अस्तित्व को निगलने की ताक में
मोर्चा थामें हैं ।
रे अबला !
युग–युग से निर्हित निस्वार्थ
स्वबल का दान कर ममत्व से
पौरूषता की नींव सींचती रही,
छल–छद्म के कलेवर धारे
मातृजाति, मातृसंतति,
मातृभाषा मातृभूमि से
निरा सम्बोधन पर
गर्व करती रही ।
जो घुल जाती संवेदना
संज्ञाशून्य
अन्ध–बधिर पौरूषता की,
आत्म अस्तित्व स्थापन की
पीड़ा से छटपटाती जननी के
तन्य जबड़े को बलात् खोलकर
फूटते दारूण चीत्कार में,
यों न होता गर्दीला
सिरमौर संस्कृति का
अभिनव चित्र चटकीला,
न होते हम
मात् सम्मुख
निस्तेज औ निर्दम
प्रबल होता जो
मातृत्व के उपकार में
पौरूष का प्रतिकार । ●

अधूरा महाभारत

हल्बी लोक संगीत की दशा और दिशा

बलबीर सिंह कच्छ
कार्यक्रम अधिशासी
आकाशवाणी
जगदलपुर
मो.–9425590590

जनजातीय जीवन का अभिन्न हिस्सा है संगीत! पर्व, तीज–त्यौहार का जीवन्त हिस्सा है संगीत! सुख और दुःख की भावाभिव्यक्ति का उत्कृष्ट माध्यम है संगीत, क्योंकि यह प्रकृति और संस्कृति के बीच की कड़ी है। बस्तर का संगीत प्रकृति और जीवन के अटूट रिश्तों को उजागर करता है। संगीत के माध्यम से संस्कृति की पहचान का मार्ग प्रशस्त होता है।

बस्तर की जनजातीय संस्कृति में जितनी विविधता है, जितनी सम्पन्नता है उतनी शायद देश की किसी अन्य आदिम संस्कृति में हो। बस्तर में अनेक समुदाय के लोग निवास करते हैं– कलार, सूण्डी, हल्बा, घसिया, धुरवा, माहरा, राउत, बामन, धाकड़, गोंड़, माड़िया, मुरिया, भतरा, झोड़िया इत्यादि।

यदि हम यहां की जन बोलियों के बारे में बात करें तो यहां अनेक बोलियों का प्रचलन मिलता है। उत्तर–पश्चिम में गोंडी और छत्तीसगढ़ी, पूर्व–दक्षिण में दोरली, धुरवी, मध्य और पूर्व बस्तर में हल्बी और भतरी बोलियों का प्रयोग किया जाता है। किन्तु बस्तर की सम्पर्क बोली हल्बी है जिसे सम्पूर्ण बस्तर के लोग समझते और बोलते हैं।

हल्बी परिवेश के लोकसंगीत को निम्न प्रकार से वर्गीकृत किया जा सकता है–

1. लोकगीत 2. लोक नृत्य 3. लोक वाद्य–यंत्र
4. लोक कथा 5. लोकगाथा।

हल्बी परिवेश के लोक गीतों में लेजा, परब, मारिरसोना, खेलगीत, मुंदी गीत, छेरटा गीत, डंडारी गीत, लोरी गीत, जगार गीत, झाली आना गीत, विवाह संस्कार गीत, कहनी गीत, चाखना गीत।

हल्बी परिवेश के लोक नृत्यों में परब, डंडारी, छेरता, उड़जा, बीया नाचा, गोंडदी नाचा, देव नाचा।

हल्बी परिवेश के लोक वाद्य यंत्रों में–नंगरा, मोहरी, तुड़बुड़ी, निशान, ढ़ोल, टामक, किन्दरी बाजा, बांसुरी, ठुड़का, ठुमरी, तोड़ी, करनाल, ठुसिर, बिरिया ढोल, राम बाजा, दासकाड़ी, मुण्डा बाजा, खंजरी, घीनि, मांदर, मांदरी, मिरदिंग, डमरू, धनकुल, टिगों, ठोंगरा, और झाप बाजा।

हल्बी परिवेश की लोक गाथाओं में बेलतीमती रानी, पारदेया राजा, हरदी गुण्डी, काला सुन्दर, आला–उदल, बाली उदल, मार राजा, हुडबंद राजा–मालती रानी, ललीत कुंवर, करित माल, सिलयारीमती रानी–जलजलया राजा, दयला दई, बेलुता बेलुर घसनीन, इन्दरजीत– पवनजीत, काटा सेलार रानी– बाण्डा ढोंडेया राजा, बेलार सन, दुलमा दई रानी, बांजा राजा, नंदनी बुड़ी, सोनादई रानी, मैनामती रानी, बिरला ढिण्डा।

हल्बी परिवेश के कटाव लोक कथा–काकड़ा, जूटेया–मूसा, कोलया आरू टेण्डका, कोलया आरू बाघ, कोलेया आरू ढेला, डोकरा–डोकरी, सातभाई, खोड़या माटया, धुंगिया खाया सवकार, माय–बेटा, नकटा स्वांग, राकसीन, कुमण्डा फुलेया राजा इत्यादि।

यहां मैं कुछ गीतों का उल्लेख करना चाहूंगा। बस्तर के सांस्कारिक कार्यों में विवाह एक महत्वपूर्ण सामाजिक कार्य है। बस्तर के विवाह संस्कारों में गोत्र व्यवस्था का पूरा ध्यान रखा जाता है और निषेधों को भी मानकर पालन किया जाता है। विवाह संस्कार बस्तर की जनजातियों में अपनी विशेषताओं, सादगी, आडम्बरों से दूर दहेज या मांग जैसी, विसंगतियों से अछूता होने के कारण एक आदर्श प्रस्तुत करता है। विवाह संस्कार को सम्पादित करने कई रस्म हैं। 1. हरदी पिसनी 2. मांडो गाड़नी 3. रैला माटी 4. मउड़ बांधनी 5. देव तेल 6. सगा तेल 7. लगीन 8. जोड़ी तेल 9. बान 10 तेल उतरानी 11. चाउर मारनी 12. भाटा–भाटा 13. बंधनी 14. कोरली 15. माण्डो झलानी 16. बूची 17. गोहनो 18. समधीन भेंट।

प्रत्येक रस्म वाद्य धुन और गीत से आरंभ होते हैं। विवाह संस्कार का आरंभ हल्दी पीसने की रस्म से होता है। पास–पड़ोस की महिलाएं कच्ची हल्दी को सील में पीस कर तथा ओखली और ढेकी में कांड कर (कूट कर) नई हण्डी में रखते हैं। इस समय जो गीत गाया जाता है उसे हरदी–गुण्डी गीत कहते हैं–

गुण्डी रे गुण्डी बलीस रे सरगी
गुण्डी रे गुण्डी बलीस रे
बाड़ी चो हरदी मुण्डी रे
बाड़ी चो हरदी मुण्डी रे सरगी
बाड़ी चो हरदी मुण्डी रे
चलो रे पैसा मुण्डी रे
चलो रे पैसा मुण्डी रे सरगी
चलो रे पैसा मुण्डी

बाबा के रचन धरीस रे सरगी
बाबा के रचन धरीस से
आया के रीस धरीस रे
आया के रीस धरीस रे सरगी
आया के रीस धरीस से
सिलो रे रिलो बलीस रे

दूरस्थ ग्रामीण अंचल के लोग अधिकांशतः अशिक्षित हैं। यहां साहित्य केवल वाणी तक ही सीमित है। इनकी देह ही इनका साहित्य है। इनका साहित्य स्मृति या जिव्हा पर संचित है। वाणी के द्वारा जो भी साहित्य सृजन होता है। उसे स्मृति में सुरक्षित रखा जाता है। और संगीत के माध्यम से उसका सम्प्रेषण होता है। चांदनी रात में युवक–युवतियों का समूह मनोरंजन के लिये एकत्रित होता है ये एक–दूसरे पर कटाक्ष करते हुए हंसी–मजाक करते हुए गीत गाते हैं। जिसे खेल गीत कहा जाता है।

लड़की– आमी लेकी मन तीनक तीना/ गोटक मुंदी दिया चिना/ आले गीलट मुंदी के नाय दिया चीना/ दखु आय घिन–घिना रे सेलो–रानो बेलोरे सेलो सई टोरा तेलो चकर, चक ढांय–ढांय करे सेलो सुरबेलो.....बला बाली फूलो. .....

लड़का– आले बला–बला टपाय बला पाका बाटे जाओ झोला आले बलु आहस बलते बला टोंडे–टोंडे नाय छोला रे सेलो/सेलो–रानो बेलो रे सेलो सई टोरा तेलो/ चकर, चक ढांय–ढांय करे सेलो सुरबेलो.....बला बाली फूलो.....

लड़की– ओदरला टेण्डका चेगीला गचे/ मुण्डी झुलाय–झुलाय नोचे/ आले पानी घाटे बसुन टाकते रलु/ तुमचो किरता काजे रे सेलो/सेलो– रानो बेलो रे सेलो सई टोरा तेलो/ चकर, चक ढाय–ढाय करे सेलो सुरबेलो बला बालीफूल.....

जोली गीत, जिसे लोरी गीत भी कहते हैं। जब बच्चे के माता–पिता, खेत, बाजार, पानी लाने, जंगल में लकड़ी लाने या कहीं घर से बाहर रहते हैं। तब बच्चों को देख–रेख कर रही उसकी नानी या कोई देख–रेख कर रही महिला रोते बच्चे को लाड़ करते हुए बांस से बने झुलना में सुला कर मिठाई, कपड़े, खिलौने आदि का नाम बताते हुए गीत गा गाकर बच्चे को सुलाने की कोशिश करती है।

जो–जो जोली रे बाबु सामसुन्दर 2
चाई चाचा रे बाबू करो तुई जे 2
जो जो जोली रे बाबु सामसुन्दर 2
तुचो बुआ रे बाबु सामसुन्दर 2
गांजा मिठई आनुन देयदे 2
जो जो जोली रे बाबु सामसुन्दर 2
चाई चाचा रे बाबु करो तुईजे 2
तूचो बाबा रे बाबु तूचो काजे 2
लाडु घेनुन आनुन देयदे
जो जो जोली रे बाबु सामसुन्दर 2
चाचा चाई करो रे हाण्डा करो तुइ 2

फसल कटने के बाद पौष मास के शुक्ल पक्ष में छेरता पर्व आता है। जिसमें गांव के बालक, बालिकाएं, किशोर, प्रौढ़, वृद्ध सभी अपना–अपना समूह बनाकर सज–धज कर घर–घर में नाचने निकलते हैं। इसके बदले इन्हें चावल, धान, मक्का, जोंदरी(ज्वार) आदि अनाज मिलते हैं। जिसे छेरता नाच समाप्त होने के बाद सभी मिलकर तालाब या नदी किनारे जा कर पकाते हैं। खाने के पूर्व एक रस्म अदा करते हैं। एक दोनी में दाल–भात, आग की लुठी (जलती हुई लकड़ी), गुड़ और धूप लेकर तालाब या नदी के खण्डहर में जाकर पूजा करते हैं। पश्चात दोनी में रखे दाल भात को तालाब या नदी में डाल देते हैं। इसके बाद सभी लोग स्नानकर एक साथ बैठ कर भोजन करते हैं।

बालक समूह में एक लड़का को नकटा बना दिया जाता है। नकटा याने नकलाह जिसे जोकर कह सकते हैं। इसके देह में कोयले से विभिन्न आकृति बनाकर, जंगली, फल–फूल से सजा दिया जाता है। एक बड़ी सी लौकी को खोलकर मुंह की तरह मुखड़ा(मुखौटा) बना देते हैं। जिसे नकटा मुंह में रख कर नाचता है । समूह निकलता है गांव के घरों में नाचने। इस समय जो गीत गाया जाता है उसे झिरलिटी गीत कहते हैं।

झिरलिटी–झिरलिटी पण्डकी मारा लीटी रे नकटा छेरछेर
अयले ढोड़ा–फयले ढोड़ा मुंजी दांदर ओड़ा रे नकटा छेर छेर
दांदर दखुक जा बोड़ा चुचाय हाड़ा–गोड़ा है नकटा छेरछेर
करया डांडा लुरे लुरे पंडरी डांडा लुरे रे नकटा छेरछेर
माहदेव चो परसाद ने पंडरी बायले मिरे रे नकटा छेरछेर

इसी तरह लड़कियों के समूह में भी एक लड़की को सजावटी वेशभूषा पहना कर सजा दिया जाता है। पैर में घुंघरू, हाथ में मयुर मुठा (मयूर पंख से बना झाड़ू की आकृति का गुच्छा), मुंह में रंगीन फूलों का रंग होता है। इस सजी ध ाजी लड़की को धंगड़ी कहते हैं। यह समूह नाचते निकलता है। शुरू होता है धंगड़ी गीत–

गुड़दुम–गुड़दुम बाजा बाजीला
बाजा बाजीला तेब दांय गोरी लो
आरापुरीन धंगड़ी लेकी धंगड़ी नाचीला
धंगड़ी नाचीला तेब दांय गोरी लो
गुड़दुम–गुड़दुम बाजा बाजीला
आचीला–पाचीला, चीहला फुटीला
चीहला फुटीला देब दांय गोरी लो
चीहला भीतरे मांग मचरी झपके लुकिला
झपके लुकिला तेब दांय गोरी लो
गुड़दुम–गुड़दुम बाजा बाजीला

हल्बी परिवेश के लोक संगीत में लोक वाद्य यंत्रों का विशेष महत्व है। सामाजिक, धार्मिक, सांस्कृतिक कार्यों का निष्पादन नंगरा, मोहरी, ढोल, निशान, टामक, तुड़बुड़ी वाद्यों और गीतों से आरंभ होता है। चरू, जतरा, बजार, मण्डई जगार में देवी–देवताओं को आहवान करने के लिये नंगरा, मोहरी और तुड़बुड़ी वाद्यों से वाद्य धुन बजाई जाती है। परब नाचा, बिया नाचा में भी ढोल, निशान, मोहरी और तुड़बुड़ी वाद्यों का प्रयोग किया जाता है। मांदर वाद्य का प्रयोग नृत्य में किया जाता है। राम बाजा तथा दासकाड़ी का प्रयोग भजन व गीत गायन में किया जाता है।

इस प्रकार हम हल्बी लोक संगीत में सामाजिक चेतना, ध ार्मिक आस्था, सामाजिक तथा सांस्कृतिक एकता, नैतिक तथा बौद्विक विकास, प्रकृति दर्शन, आंचलिकता, सार्वजनिकता, स्वच्छता, सहजता एवं सादगीपन जैसे जीवन के महत्वपूर्ण घटकों से परिचित होते हैं।

किन्तु आज समय बदल रहा है, परिवर्तन की होड़ लगी है। परिवेश, वातावरण और पर्यावरण आदि में परिवर्तन आ रहा है। चमक–दमक के क्षतिकारक प्रभाव से कुछ भी अछूता नहीं रहा है। लोक संगीत भी इससे प्रभावित हो रहा है जो भविष्य के लिये अशुभ संकेत हैं। वृक्ष कटेंगे तो वृक्षारोपण हो जायेगा, वायुमंडल प्रदूषित होगा तो वैज्ञानिक उपक्रमों द्वारा दोष मुक्त कर लिया जायेगा यदि लोक संगीत विलुप्त हो गया तो निश्चित ही हम अपनी यशस्वी परम्परा खो बैठेंगे। जिसे पुनः अर्जित करना हमारे लिये असम्भव तो नहीं जटिल अवश्य हो जायेगा।

इन्हें संरक्षित करने के कुछ विकल्पों पर विचार कर सकते हैं। लोक गीतों, लोक कथाओं, लोक गाथाओं को लिपिबद्व किया जाये, मूल रूप में ध्वन्यांकन कर संग्रहण किया जाये तथा संगोष्ठियों के आयोजनों में मूल कलाकारों को आमंत्रित कर उनमें जागरूकता लाने की आवश्यकता है। ●

इज्जत

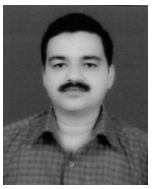

शिशिर द्विवेदी
उपसंपादक
मीडिया विमर्श
बस्ती उत्तरप्रदेश
मो.–09451670475

प्रदेश की राजधानी लखनऊ। अभी कल ही एक राजनैतिक दल ने एक महारैली का आयोजन कर अन्य दलों को उनकी औकात बताई थी। प्रान्त के कोने–कोने से बसों में भर–भर लोगों का हुजूम लाया गया था। सारा शहर इस भीड़ में जकड़ उठा था। सारी व्यवस्था चरमरा कर टूट गयी थी। पुलिस महकमे की सारी लाचारी उनके अफसरों के चेहरों पर चुहचुहा आयी थी। आज शहर शान्त है। रोजमर्रा का जीवन पूर्ववत् चल रहा है। विभिन्न कोनों से आयी बसें अपनी भीड़ लेकर जा चुकी है।

बादशाह नगर स्टेशन के बाहर मैंने उसे देखा – निरीह चेहरा, दो–तीन दिन की बढ़ी दाढ़ी, मटमैली धोती, कुर्ता, पैरों में प्लास्टिक की चप्पल। चेहरा बता रहा था कि दो दिन से उसके हलक से नीचे कुछ नहीं गया था।

पूछने पर पता चला कि उसे महारैली में गोरखपुर में लाया गया है। लखनऊ टहलाने और सौ रूपये प्रतिदिन का वादा किया गया था। भीड़–भड़क्के में वह अपने दल से बिछड़ गया है। जेब में एक पैसा नहीं, गोरखपुर कैसे जाए?

'रेल से चले जाओ भाई।' मेरा सुझाव था।

'बिना टिकट जाने की हिम्मत नहीं है। पकड़े गये तो सारी इज्जत मिट्टी में मिल जायेगी। परिवारदार किसान आदमी हूं।' उसका उत्तर था।

चाहकर भी उसकी मदद करने की स्थिति में मैं नहीं था। उसके 'इज्जत' शब्द पर भीतर ही भीतर हंसी आ रही थी। इन आदमियों के पास 'इज्जत' के अलावा और है ही क्या? इसे लखनऊ लाकर भीड़ का हिस्सा बनाकर किसी नेता ने तो अपनी इज्जत बढ़ा ली और इस महानगर में उसकी इज्जत तार–तार कर दी। आज की इस गलाकाट राजनीति में अपनी इज्ज़त बचाने के लिए दूसरे की इज्ज़त नीलाम करना जरूरी है।

वह सर झुकाए हौले–हौले दूसरी दिशा में चला जा रहा था। ऐसा ही एक चित्र 'अपना–अपना भाग्य' में जैनेन्द्र कुमार ने खींचा था। सम्भव है किसी दिन इसकी लाश भी इस महानगर की किसी सड़क पर लावारिस पाई जाय। ●

बस्तर पाति प्रकाशन की पुस्तकों का भव्य विमोचन

श्री विमल तिवारी जी का काव्य संग्रह 'गीत–गुंजन', श्री जयचन्द्र जैन जी का आध्यात्मिक आलेख संग्रह 'विचार अपने–अपने' और बस्तर क्षेत्र के सोलह काव्य रचनाकारों का संकलन अरण्यधारा–2 का विमोचन बस्तर के साहित्यिक आकाश में एक खगोलीय हलचल की मानिन्द आर्कषण का केन्द्र बन गया।

यह आयोजन अपने आप में विशिष्ट इसलिए भी है कि साहित्य से जुड़े अनेक लोगों को अपनी प्रतिभा साबित करने का मौका मिला, उनके अलग तेवर नजर आये। उन्होंने साहित्य की अन्य विधा में भी हाथ आजमाए। अवधकिशोर शर्मा ने विमल तिवारी के काव्य संग्रह गीत–गुंजन की समीक्षा प्रस्तुत की तो श्रीमती बरखा भाटिया ने अरण्यधारा–2 की समीक्षा प्रस्तुत की। पूनम वासम ने अपने पहले–दूसरे प्रयास में ही साबित कर दिया कि वे भविष्य की उत्कृष्ठ मंच संचालक हैं। डॉ. कौशलेन्द्र मिश्र सरीखे उच्च समीक्षक हमारे बीच हैं, यह बात भी इस कार्यक्रम से जानकारी में आयी। श्री भरत गंगादित्य द्वारा दो पुस्तकों में रेखाचित्र बनाए गये थे।

बस्तर पाति का हमेशा से नये लोगों को मौका देने और नये प्रयोग करने का सिद्धांत रहा है और यह हमेशा से सफल ही रहता है।

श्री नरसिंह महान्ती द्वारा बस्तर के प्राकृतिक सौन्दर्य पर आधारित सुन्दर मनमोहक कवर पेज डिजाइन किया गया था।

श्री राजेश थनथराटे एवं श्रीमती वीणा श्रीवास्तव के मधुर गीतो के साथ शुरू हुआ बस्तर जैसे पिछड़े अंचल के बुद्विजीवी साहित्यकारों और उनके रूचिकारों को एक सूत्र में पिरोने वाला पुस्तक विमोचन कार्यक्रम दिनांक 6.12.2015 दिन रविवार को लंबे समय तक याद रखने को मजबूर कर गया है। इस कार्यक्रम की विशिष्टता का आलम यह था कि मुख्य अतिथि डॉ. चित्तरंजन कर जो कि भाषा विज्ञान के अनेक ग्रंथों के रचयिता और 250 से ज्यादा पी. एच. डी. धारियों के मार्गदर्शक हैं रायपुर से पधारे। बस्तर क्षेत्र में नारी शिक्षा की अलख जगाने वाले विख्यात पद्मश्री धर्मपाल सेनी (डिमरापाल), रामायण महाकाव्य को पुनः रचने वाले वरिष्ठ साहित्यविद् डॉ. बी.एल.झा (जगदलपुर), वरिष्ठ साहित्यकार और अनेक रचनाकारों को तैयार करने वाले श्री चितरंजन रावल (कोण्डागांव), वरिष्ठ कवि श्री राजा बाबू तिवारी (महासमुंद), भाषा एवं बोली के ज्ञाता होने के साथ ग़ज़ल गीतों के उत्कृष्ठ रचयिता दादा जोकाल (दंतेवाडा), हल्बी भाषा के लिए समर्पित श्री हरिहर वैष्णव (कोण्डागांव), कहानी और लेख में अपनी पकड़ साबित कर चुके डॉ. कौशलेन्द्र मिश्र, तीखे हास्य और व्यंग्य के रचनाकार श्री महेन्द्र जैन (कोण्डागांव), श्री ऋषभ जैन प्रसिद्ध शिक्षाविद् (कोण्डागांव), विख्यात ग़ज़लकार श्री रऊफ परवेज़, श्री ऋषि शर्मा ऋषि, नूर जगदलपुरी, शफीक रायपुरी, याकूब नसीम (जगदलपुर), देशभक्त कवि श्री जे.पी. दानी, हल्बी, हिन्दी और छत्तीसगढ़ी के कवि श्री धनेश यादव (नारायणपुर), समसामायिक विषयों को जोड़कर ग़ज़ल रचने वाली श्रीमती बरखा भाटिया, अपनी विशिष्ट शैली में कविता पाठ करने वाली श्रीमती एम.दंतेश्वरी राव (कोण्डागांव), अपनी कविताओं में नयापन रचने वाली चंद्रकांति देवांगन (दंतेवाडा), अपनी विशिष्ट शैली में धमाकेदार प्रस्तुति देनेवाली श्रीमती शकुनतला शेण्डे (बचेली), प्रेम कविताओं की एक अनोखी शैली में लिखने वाली श्रीमती पूनम वासम, बीजापुर जैसे दूरस्थ इलाके में साहित्य का झण्डा फहराने वाले श्री पुरषोत्तम चंद्राकर (बीजापुर), संवेदनशील कवयित्री श्रीमती गुप्तेश्वरी पाण्डे (जैबेल), एकलव्य विद्यालय के प्राचार्य डॉ. प्रमोद शुक्ल (करपावण्ड) और छत्तीसगढ़ के जिलों की सीमा लांघकर हम सबका उत्साहवर्धन करने के लिए वरिष्ठ कवयित्री और समाजसेवी श्रीमती रीमा दीवान चड्ढा नागपुर से पधारी थीं।

कार्यक्रम में सम्मिलित अन्य विशिष्ट साहित्यकार थे श्री जोगेन्द्र महापात्र जोगी, श्रीमती मोहिनी ठाकुर, श्रीमती शैल दुबे, श्री शशांक शेण्डे, श्री सुरेश विश्वकर्मा, श्री सुभाष पाण्डे, श्री नरेन्द्र पाढ़ी, श्री नरेन्द्र यादव, श्री बलवीर सिंह कच्छ, खुदेजा खान, डॉ. योगेन्द्र मोतीवाला, श्रीमती सुषमा झा, श्रीमती सरिता सिंह, श्री बी.एल. विश्वकर्मा, श्रीमती पूर्णिमा सरोज, श्री बसंत चव्हाण, श्रीमती रीना जैन, प्रीतम कौर, रानू नाग, श्री हेमंत बघेल, श्री सुनील लम्बाडी, श्री भरत गंगादित्य, श्री रमेश जैन, श्रीमती गायत्री आचार्य, श्री गोपाल पोयाम, श्री जैनेन्द्रसिंह, श्री दिनेश कौशिक आदि थे।

इसके अलावा अन्य सम्मानित जन थे, श्रीमती रमारानी जैन, श्रीमती सरला जैन, श्रीमती ममता जैन, श्रीमती रमा जैन, श्रीमती कीर्ति जैन, श्रीमती मीना जैन, श्री अभय जैन आदि।

सारे दिन के कार्यक्रम में सुमधुर भोजन की व्यवस्था ने चार चांद लगा दिये। दिन भर के कार्यक्रमों की श्रृंखला में यह चौथा कार्यक्रम था।

इस कार्यक्रम में पं. सुन्दरलाल शर्मा सम्मान से सम्मानित श्री हरिहर वैष्णव (कोण्डागांव), राष्ट्रीय शिक्षक पुरस्कार से सम्मानित सुश्री उर्मिला आचार्य (जगदलपुर) एवं श्री ऋषभ जैन (कोण्डागांव) का सार्वजनिक अभिनंदन भी किया गया।

इस कार्यक्रम में लाला जगदलपुरी जी को पदमश्री सम्मान देने की मांग के लिए हस्ताक्षर अभियान भी आयोजित था।

कार्यक्रम का संचालन श्रीमती पूनम वासम (प्रथम सत्र) एवं श्रीमती पूर्णिमा सरोज (द्वितीय सत्र) द्वारा किया गया।

आभार प्रदर्शन श्री शशांक शेण्डे (सह संपादक बस्तर पाति) किया गया।

समस्त पुस्तकों की सेटिंग, कवर पेज कम्पोजिंग, डिजाइनिंग, टायपिंग, सम्पादन आदि एवं विमोचन कार्यक्रम की रूपरेखा, संयोजन एवं क्रियान्यवन मेरे द्वारा (सनत जैन, सम्पादक बस्तर पाति) किया गया था। साहित्य एवं कला समाज के बेनर के तले हुए इस भव्य एवं सफल कार्यक्रम को लंबे समय तक याद किया जावेगा।

इस आयोजन में नवोदित कवयित्री श्रीमती रीना जैन जगदलपुर द्वारा 'बस्तर पाति' के सम्मान में कुछ यूं कहा गया–

छह दिसम्बर दिन रविवार
बस्तर पाति का त्यौहार।
कविता कहानी और हाइकू का संसार
बढ़ रहा है साहित्य संसार।
बस्तर पाति ऐसी लगती है
जैसे हो बस्तर का चंद्रहार।
इस मेले में हो रहा
साहित्यकारों से व्यवहार।
बस्तर पाति में हो रहा हर बार
बस्तर क्षेत्र का प्रचार–प्रसार।
बस्तर पाति का यह त्यौहार
बार–बार, हर बार।
बढ़ रहा है सनत जी का कार्यभार
साहित्य सृजन करने के लिए
आप सभी का बहुत–बहुत आभार। ●

बस्तर पाति प्राप्त करें–

जगदलपुर– (1)अनुराग बुक डिपो, सिरासार चौक (2)मिश्रा बुक डिपो, नया बस स्टैण्ड (3)महावीर बुक डिपो, हाई स्कूल रोड (4)नरेन्द्र न्यूज एजेन्सी, पुराना बस स्टैण्ड
कोण्डागांव–(1)अमित बुक डिपो, बस स्टैण्ड के पास
कांकेर–(1)विजय बुक डिपो, पुराना बस स्टैण्ड के पास
नारायणपुर–(1)स्वामी स्टेशनरी, बस स्टैण्ड के पास
सुकमा–(1)दंतेश्वरी स्टेशनरी, बस स्टैण्ड के पास
बिलासपुर–(1)रेल्वे बुक स्टॉल
रायपुर–(1)पारख न्यूज एजेन्सी, पुराना बस स्टैण्ड (2)अशोक बुक सेलर, जय स्तम्भ चौक (3)रामचंद बुक डिपो, पुराना बस स्टैण्ड (4)क्रास वर्ड, कलर्स मॉल, पचपेढ़ी नाका (5)रेल्वे बुक स्टॉल
भाटापारा–(1)रेल्वे बुक स्टॉल
भिलाई–(1) श्री राजेन्द्र जैन, के.पी.एस. स्कूल के पास, नेहरू नगर
दुर्ग–(1)खेमका बुक डिपो, रेल्वे स्टेशन के पास
दल्ली राजहरा–(1)राकेश पान पैलेस, बस स्टैण्ड (2)मनोज पान पैलेस, बस स्टैण्ड
इंदौर–(1)जैन बुक स्टॉल, सरवटे बस स्टैण्ड (2) श्री इंदौर बुक डिपो, नवनीत प्लाजा, ओल्ड पलासिया
जबलपुर–(1)गंगा बुक डिपो, श्याम टाकीज के पास (2) साहू बुक डिपो, श्याम टाकीज के पास (3)जनता न्यूज एजेन्सी, श्याम टाकीज के पास
करेली–(1)श्री बालचंद जैन, मेन रोड
सीहोर–(1)सतीश जनरल स्टोर्स, किथौला बाजार
भोपाल–(1)वैरायटी बुक हाउस, जी.टी.बी काम्पलेक्स, टी.टी. नगर
नागपुर–(1)पुस्तक संसार, धानवते चैम्बर्स, सीताबर्डी
छपरा–(1)मोहन बुक्स एण्ड न्यूज एजेन्सी, रोडवेज बस स्टैण्ड
पटना–(1)मुरारी प्रसाद बुक सेलर, न्यू मार्केट
रांची–(1)माडर्न बुक डिपो, मेन रोड
पुर्णिया–(1)लालमुनी बुक स्टॉल, श्री लालमुनी शाह, आर.एन. शाह चौक
बस्ती–(1)शिशिर द्विवेदी, उपसंपादक मीडिया विमर्श, बस्ती उत्तरप्रदेश मो.–09451670475

रचनाकार कृपया ध्यान देवें– आपकी रचना में हमारी संपादकीय टीम के द्वारा आवश्यक सुधार एवं शीर्षक परिवर्तन संभव है। समयाभाव के कारण इसके लिए अलग से पत्राचार संभव नहीं है अतः इसे अपनी स्वीकृति मानते हुए प्रकाशन हेतु रचनायें प्रेषित करें। कमजोर रचनाओं की प्राप्ति और उन्हें प्रकाशित न कर अस्वीकृत करने की अपेक्षा उनमें आवश्यक सुधार कर प्रकाशित करना हमारी दृष्टि में उचित है।

जंगल गाथा

लोकबाबू
311, लक्ष्मी नगर,
रिसाली
भिलाई नगर
छ.ग. 490006
मो. 09977030637

प्राकृतिक सम्पदा से सम्पन्न छत्तीसगढ़ की अमीर धरती पर गरीबी घासफूस की तरह फैली हुई थी। इसी घासफूस पर सिर उठाये एक छोटा–सा गांव आबाद है – कंडेल गांव। धमतरी जिले के इस गांव के बारे में लोग कहते हैं कि यहां कभी महात्मा गांधीजी के पांव पड़े थे।

सात–आठ दशक पुरानी बात गांववालों को अब कम ही याद है। उस पीढ़ी के लोग भी अब नहीं रहे। मगर केशव. ..... केशव का नाम बच्चे–बूढ़े सभी जानते हैं। .....वो घेंघर्रा टूरा! मनखे मन ले डर्राथे! गऊ बनात–बनात भगवान हं वोला मानुश रूप दे दिस।

पतली–दुबली काया पर लम्बी केशराशि, मटमैला श्याम शरीर, शरीर पर गंदे अजीब, अपर्याप्त कपड़े। घिघयाली ज़बान और आंखों में स्थायी भय। अठ्ठारह साल के केशव को सबके बीच अलग से पहचाना जा सकता था। पांच ही साल तो हुए हैं उसे गांव से गये। मगर अब भी कहीं वह भीगी बिल्ली सा चुपके से आ प्रकट हो तो सब उसे पहचान लेंगे। केशव के मां–बाप मर चुके थे। वह भैया–भाभी के पास रहता था। भैया ने उसे लतेलू दाऊ के यहां वार्षिक दो खंडी धान (लगभग 1200 कि.ग्राम) के बदले नौकर रख छोड़ा था। वह तीन वर्षों से यह काम कर रहा था। दाऊ की बकरियां चराने का काम। उसे यह काम भाता तो था, मगर शाम को लौटने पर दाऊ की बेगारी उसे खलती थी। विधुर दाऊ उससे पैर दबवाता, चिलम भरवाता, बिस्तर लगवाता और कभी–कभी अपने साथ बिस्तर पर खींच लेता। उसके घिघयाने पर लात जमा देता। उसके समय पर भोजन की फिक्र न भैया–भाभी को थी और न दाऊ को। एक को धान से मतलब था तो दूसरे को बेगारी से।

मानसिक रूप से कुछ अविकसित केशव से बकरी चराने के अलावा और कोई काम ठिकाने से होता भी नहीं था। उसे सब तरफ से डांट और मार पड़ती। कभी खाना न मिलने पर वह घर से बाहर घिघयाता पड़ा रहता। बिना बुलाये घर के अंदर जाने का साहस न था। बाहर के लोग भी उसकी उपेक्षा और अपमान करते। बड़े तो बड़े छोटे बच्चे भी उसका मजाक उड़ाते। अनेक बार उसने मर जाने की कोशिश की। एक गर्मी की रात वह तालाब में जा डूबा। मगर गांव का कुत्ता साथ–साथ पानी में तैरता उसे खींचता रहा। वह मर न पाया। एक बार चूहा मारने की दवा पानी में घोल पी गया, मगर मात्रा कम होने से बच गया।

सपने में अकसर उसे भूत–प्रेत दिखायी पड़ते। वह उठ बैठता। घिघयाती जबान में भजन गाने लगता। रात में उसकी बेसूरी, खौफनाक आवाज लोगों की नींद उड़ा जाती। लोग उसे चुप कराते या फिर कहीं दूर भगा देते। वह गांव से बाहर तालाब की मेड़ पर जा बैठता। गांव का वही एक लावारिस कुत्ता–जो सबका था और किसी का भी नहीं – उसके पीछे हो लेता। केशव को लगता यह कुत्ता ही उसे समझता है। उसका साथी है।

एक दिन कंडेल गांव में नागा बाबाओं का आगमन हुआ। वे चार थे। अमरकंटक से आ रहे थे। उनका असल डेरा वहीं था। वे इधर प्राचीन सप्त–ऋषियों में अंगीरा, श्रृंगी, मचकुंद और गौतम के आश्रमों की परिक्रमा पूरी करने के लिए निकले थे। कपिल, भृगु और अगस्त मुनि के आश्रम के दर्शन अमरकंटक में रोज ही हो जाते थे। दण्डकारण्य (बस्तर) के इस भाग की यात्रा के बिना परिक्रमा अधूरी थी। नागा बाबाओं को जीवन की सार्थकता इसमें दिखती। कंडेल से यह दूरी सौ किलोमीटर के लगभग थी। यात्रा पैदल थी। जगह–जगह विश्राम की जरूरत पड़ती। एक रात उन्होंने कंडेल गांव में विश्राम किया।

प्रातः चार बजे वे आगे की यात्रा को निकले। पलट कर गांव की तरफ देखा तो एक किशोर को अपना अनुगमन करते पाया। यह केशव था। नागा बाबा रूके। केशव उनके चरणों में जा गिरा। घिघियाकर बोला–महाराज, मैं घलो चलहूं। मना झन करिहौ!

तीन दिन की यात्रा के बाद वे नगरी–सिहावा में भी एक रात विश्राम किया था, मगर वह जगह उन्हें पसंद न आयी थी। श्रृंगी–ऋषि की पहाड़ी का सौंदर्य नष्टप्राय था। चारों तरफ आबादी घिर आयी थी। जबकि सोंढूर बांध के किनारे मचकुंद ऋषि का आश्रम अपने चारों तरफ प्राकृतिक सौंदर्य के साथ विराजमान था। चारों तरफ जंगल, पहाड़, ... केशव का मन प्रफुल्लित हो गया। ऐसा दृश्य उसने पहली बार देखा था। उसके जीवन को शायद इसी जगह की तलाश थी।.....अब वह यहां से कहीं नहीं जायेगा।

भोजन को लेकर यहां भी उसे थोड़ा दुख था। उसके भोजन की व्यवस्था नहीं थी। युवा बाबाओं को लेकर एक

भक्त दूर पहाड़ी पर चढ़ता नजर आ रहा था। केशव गिरता पड़ता उसके पीछे हो लिया। भूख उसे ठीक से चलने न दे रही थी। उस पर पहाड़ी में भालूओं और तेंदुओं का भय! जगह–जगह उनकी लीद पड़ी थी। रास्ते में एक जगह उसने बेल का पेड़ देखा। पेड़ पर बेल लटके थे। पके थे। पेड़ के नीचे भी फूटे हुए पड़े थे। अंदर का गूदा गायब सिर्फ खोटलियां। भालुओं ने गई रात यहां पेड़ से बेल तोड़ खाये होंगे। नीचे जमीन पर चारों तरफ दृष्टि डालने पर केशव को दो बेल साबूत मिल गये। केशव ने झटपट दोनों बेल उठा लिये। पत्थर पर रखकर फोड़ा और खा गया। अब शरीर में कुछ जान आयी। वह फिर युवा बाबाओं का पीछा करता आगे पहाड़ी चढ़ने लगा। अंततः वह पहाड़ी की ऊंचाई पर पहुंच गया।

उसे यह देखकर प्रसन्नता हुई कि पहाड़ी पर तालाब भी है। साफ पानी से भरा हुआ तालाब। पानी जितना साफ था, नीचे उतना ही कीचड़। वह पानी पीने तालाब में उतरा तो घुटनों तक कीचड़ में जा फंसा। पानी कमर तक आ गया। कपड़े भीग गये। किसी तरह उसने कीचड़ से अपने पाँव निकाले और पानी पर तैरने लगा। उसे मजा आ रहा था। कपड़ों सहित अपने मन भर स्नान किया।

थोड़ी देर बाद वह तालाब से निकला। दूसरे कपड़े पहनने के लिए उसके पास थे नहीं। उसने आसपास बाबाओं को तलाशा, मगर उसे अपने सिवा कोई जीव नजर नहीं आया। अब क्या किया जाये ?.....उसने अपने सारे कपड़े उतारे और दूर एक झाड़ी पर सूखने के लिए डाल दिये। निर्वस्त्र कहां घूमे! वह पास की एक गुफा में घुस गया। गुफा में एक दिशा से कूलर जैसी ठंडी हवा आ रही थी। वह लेटा तो नींद भी आ गयी। जल्दी ही उसकी नाक बजने लगी। जैसे वह मुंह से घिघयाता था, नींद में उसकी नाक से भी अजीब और डरावनी आवाज निकलती थी।

तालाब के किनारे खड़े दो मंदिरों को दिखाने के बाद, आस–पास की पहाड़ी–गुफाओं और मूर्तियों को दिखाता भक्त युवा–बाबाओं के साथ उसी गुफा के करीब पहुंचा। गुफा में अंधेरा था। बाहर सूरज की रोशनी में चौंधियाती आंखों से अंदर और घना अंधेरा प्रतीत होता था। भक्त युवा–बाबाओं को बता रहा था कि यह जो सामने गुफा है, इसके अंदर से एक रास्ता है। रास्ते से उस पार निकलने पर पूरा इलाका साफ दिखायी पड़ता है, जैसे हम हवाई–जहाज में बैठकर नीचे देख रहे हों। अन्य गुफाओं के बनिस्बत यहां ज्यादा ठंडी और मोहक हवा चलती है। मुझे तो लगता है ऋषि मचकुंद यहीं रहकर तपस्या किया करते होंगे!

भक्त के पीछे तीनों बाबा गुफा के संकरे द्वार से अंदर जाने को हुए। तभी भक्त हड़बड़ाकर पीछे लौटा। उसके साथ नागा बाबा भी गिरते–पड़ते भागे।

–क्या था, क्या था ?

भक्त सरपट भाग रहा था।

–मुझे लगता है वहां काला तेंदूआ सोया है। जल्दी भागो। यदि जाग कर पीछे आया तो पहाड़ी से कोई जिंदा नीचे नहीं उतरेगा!

बाबाओं ने कभी काला तेंदुआ नहीं देखा था। मगर जान जोखिम में डालकर उन्हें यह मंजूर नहीं था। वे एक–दूसरे को पीछे छोड़ते आगे भाग रहे थे। पीछे पलट कर देखने को भी किसी ने साहस नहीं किया। जल्दी ही वे पहाड़ी से नीचे मंदिर में हांफते–कांपते पहुंच गये। बुजुर्ग बाबा ने पूछा– क्या हुआ ?

–हम लोग एक गुफा में घुस रहे थे। वहां काला–तेंदुआ सोया पड़ा था। हम को देखकर गुर्राया। हम प्राण बचा कर भाग आये।

–जंगली जानवर है। गुर्रायेगा ही। यही उसकी जुबान है!

–बुजुर्ग बाबा उपदेश देने लगे –तुम लोग नाहक डर गये। हो सकता है वह तुम्हें देखकर नाराज न हुआ हो। तुम्हारा स्वागत कर रहा हो। इधर तो हजारों पहाड़ियां हैं। बहुत सी चर्चित हैं, पवित्र हैं। सप्तर्षियों का आवास हैं। तेंदूआ भी कोई साधारण न होगा। किसी जन्म का ऋषि होगा। ऋषि मचकुंद भी हो सकते हैं! उन्होंने अपनी दिव्य दृष्टि से तुम्हें देखा होगा ! तुम्हारा यहां आना सार्थक हुआ, बालकों। प्रभु का नाम लो और बैठकर ऋषि मचकुंद का दस मिनट ध्यान करो !

शाम चार बजे केशव की नींद खुली। बहुत गहरी नींद सोया था वह। उसने झाड़ी से कपड़े उतारे और पहन लिए। फिर सारी पहाड़ी छानने लगा। कोई न मिला। वह पुनः तालाब के करीब पहुंचा और पानी पी गया। फिर बेल उठाते–खाते पहाड़ी से नीचे उतर गया। अंधेरा हो आया था। युवा बाबा आसपास टहल रहे थे। दो–तीन ग्रामीण बुजुर्ग बाबा के साथ गांजा पीते लोक–परलोक के साथ ही जंगली जानवरों की बातें कर रहे थे। बाबा कह रहे थे– जानवरों में भेड़िया सबसे हिंसक है। उनकी टोली में यदि कोई भेड़िया अपाहिज या बीमार या कमजोर हो जाये तो बाकी भेड़िये उसे मार कर खा जाते हैं।

केशव सीधे जाकर बुजुर्ग बाबा के पांव दबाने लगा। बाबा ने अपने पैर और जरा लम्बे कर दिये। तभी किसी बात पर बुजुर्ग बाबा ने अपनी पोटली खींची और दुर्गा सप्तशती की दो रूपये वाली पुस्तिका निकालकर उन ग्रामीणों को एक–एक दे दी। अपनी पोटली बांधते हुए उन्होंने कहा– सच्चे मन से इसका पाठ करो, तुम्हारा संकट जरूर टल जायेगा।

एक ग्रामीण ने पुस्तिका उलट–पुलट कर देखी, फिर बोला– नागा बाबा, मोला माफ करना, मय पढ़े नइ जानो !

नागा बाबा ने वह पुस्तिका ले ली और केशव की ओर बढ़ाते पूछा– बच्चा, तू कुछ पढ़ा लिक्खा है ?

केशव ने बां–बां कर 'हां' में सिर हिलाया तो बाबा ने वह प्रति केशव के हाथों में रख दी। केशव के मुंह से निकला – पहली किलास !

दूसरे दिन अंगीरा–ऋषि के आश्रम वाली पहाड़ी का कार्यक्रम बना। बुजुर्ग बाबा की तबीयत पूरी ठीक अब भी नहीं थी। फिर वह यहां की चप्पा–चप्पा पहाड़ी पिछली यात्राओं में छान चुके थे। अतः उन्होंने एक दूसरे भक्त को आदेश दिया कि वह नये बाबाओं को अंगीरा ऋषि की पहाड़ी घूमा आये। वह भक्त बाबाओं को लेकर अतिप्रातः चल पड़ा। केशव असमंजस में था। वह क्या करें ? उसकी ओर किसी ध्यान ही नहीं। ये लोग उसे कुछ समझते ही नहीं हैं। वह थोड़ी देर यूं ही बैठा रहा। फिर इधर–उधर टहलता रहा। युवा–बाबाओं के पीछे जाने का मन न हुआ। अतः वह मचकुंद–ऋषि की पहाड़ी पर ही फिर चढ़ गया। बेल के अलावा अच्छी छान–बिन पर उसे तेंदू के फल भी खाने को मिले। मगर जी भर भोजन की हसरत मन से जाती न थी।

नागा बाबाओं के साथ केशव को आये चार दिन हो गये थे। पीछे तो कुछ था नहीं, सिवा कंडेल के कुत्ते और दाऊ की बकरियों के। भैया–भाभी तो खुश होंगे कि उससे पीछा छूटा। मगर ये जंगल, ये पहाड़ उसे भा रहे थे। उसे लगता, वह भी जंगल का कोई एक पेड़ है या जंगल का जीव। इन पहाड़ों और जंगलों के बीच बसे हुए छोटे–छोटे गांव भी उसे इसी प्रकृति का हिस्सा लगते। अब वह अकेला टहलने दूर निकल पड़ता। कभी इस इस पहाड़ तो कभी उस पहाड़ पर वह चढ़ जाता। सरई–साल के घने वनों से होकर गुजरना उसे भला लगता। बाबा के पास गांजे के धुंये से घिरे बैठे रहने की अपेक्षा यह सब बहुत भला भी था।

बुजुर्ग बाबा की तबीयत ठीक हुई। युवा–बाबाओं को लेकर वे एक दिन मंदागिरि की ओर चल पड़े। यह गौतम–ऋषि के आश्रमवाली पहाड़ी थी। यहीं पर पत्थर बनी अहिल्या देवी स्थित थी। डोलन पत्थर था। युवा–बाबाओं को इसी पहाड़ी को देखने–घूमने की उत्कट इच्छा थी। मगर यहां अमरकंटक की तरह ऊंचे–विशाल पर्वत न सही, रहने के लिए उचित आश्रम भी न थे। मंदिरों की कमी थी। भक्तों और दर्शनार्थियों के लाले पड़े हुए थे। पूजा–अर्चना और चढ़ावा तो लगभग था ही नहीं। उधर बुजुर्ग नागा बाबा ने अभी एक–दो माह मचकुंद–ऋषि के मंदिर में रूकने के मन बना लिया था। उन्होंने युवाओं को समझाया–पर्यटन के लिए सरकार इन पहाड़ों का सुन्दरीकरण करवाने वाली है। अभी प्राकृतिक रूप में जी भर कर देख घूम सकते हो!

वे रूकना चाहते हैं तो रूकें! – युवाओं ने आपस में तय किया – मगर अब हम यहां अधिक दिनों नहीं रूकेंगे!

जिस दिन सुबह नागा बाबा मंदागिरि पहाड़ी के लिए निकले थे, उनसे एक घंटा पहले केशव बांध की ओर टहलने निकल गया था। कुछ दिन चढ़े लौटा तो मंदिर में उसे कोई भी न मिला। वह भी अंदाज से मंदागिरि की ओर चल पड़ा। सोंढूर से मंदागिरि की दूरी तीन किलोमीटर थी जंगल में अकेले चलते केशव रास्ता भटक गया। असमंजस में उनसे ग्रीष्म में सूखी पड़ी सोंढूर–नदी पार की और ग्राम – गादुल–बाहरा पहुंच गया। गांव में एक घर में शादी का मण्डप तना था। ऊंचे स्वर में टेपरिकार्डर से फिल्मी गाने बजाये जा रहे थे। शादी का कार्यक्रम हो चुका था। बारातियों के बाद गांववालों के भोजन करने की बारी थी। केशव भी खाने वालों की पंगत में बैठ गया। भोजन करने के बाद वह टहलता हुआ दूर खड़े एक आदमी के पास पहुंचा। वह आदमी बीड़ी पी रहा था। और अकेला था। शादी के इस कार्यक्रम से उसे कोई मतलब नहीं था। उसका अपना अलग कार्यक्रम था। केशव ने उससे मंदागिरि का पता पूछा। केशव की घिघियाती जुबान से पहले तो वह चौंका – ये किस जीव की आवाज है! फिर सहज होकर बोला –

– पहाड़ कि गांव?

– पहाड़!

– वो सामने!

– अऊ गांव?

– पहाड़ के नीचे, किनारा में!

– पहाड़ के रस्ता?

– मांदागिरि गांव के पास ले।....तुम मांदागिरि जाहू का?

– हव!

– मय उहि गांव के हौं। मय घलो जाहूं।

– त चल न! मय रस्ता भटक जाहूं।

– मोर एक साथी रात के बेबस्था बर गे हावै। आवत होही। फेर चलबो। तुम मांदागिरि म काकर घर जाहू?

– काकरो घर नाहिं! मय पहाड़ म जाहूं। नागा बाबा के शिष्य हौं। वो मन आज पहाड़ म गे हावैं। मय रस्ता भटक गेंव।

– सन्यासी हो?

– हव!

वे दोनों बीड़ी पीने लगे। इतने में उसका साथी आ गया। एक गंदी–सी युरिया खाद की थैली में प्लास्टिक का चार लीटर का डिब्बा था। डिब्बे में महुए की कच्ची शराब भरी थी। वे दोनों व्यवस्था में गादुल–बाहरा आये थे। पास आने पर उसके साथी ने पूछा – मिलिस ?

– हव! चार बोतल!

– पइसा मांगिस?

– नहिं। गांजा के बदला म दिस।..... ये कौन हे ?

– ये नागा बाबा के चेला हे। पहाड़ म जाही।

– अब त शाम हो गय। तेंदुआ खा डारहि।..... चल हमार गांव, सबेरे उठके चढ़ जाना पहाड़!

केशव उनके साथ हो लिया। उन दोनों के पास एक ही साइकिल थी। तीनों पैदल चलने लगे। घने जंगलों के बीच उनके गांव पहुंचते अंधेरा हो चुका था। एक घर के सामने वे रूके। घर में लालटेन जल रही थी। बाहर आंगन में गाय, बछड़े, मुर्गी और सुअरों का रेल–पेल मचा था। सब इसी घर के सदस्य थे। थोड़ी दूर पर भारी मात्रा में धान–पैरा रखा था। सूखी जलाऊ लकड़ियों के कई गट्ठर पड़े थे। यह घर केशव से बाद में मिले व्यक्ति का था। उस व्यक्ति ने जानवरों के बीच रास्ता बनाया। घर के अंदर गया। लोटे में पानी, खाली गिलास, प्याज, सूखी मिर्च और नमक लेकर लौटा, उसने सारा सामान एक खाट पर रखा। टहलते जानवरों को उसने उनके अलग–अलग दड़बों में बंद किया। फिर फुरसत से आकर इन दोनों के पास दूसरी खाट पर बैठ गया। घर के अंदर से जनाना और छोटे बच्चों की आवाज बीच–बीच में आ रही थी। दूसरे व्यक्ति का घर यहां से पास ही था।

– नागा बाबा के चेला हो तो ज्ञान–ध्यानी होबे करहू!

केशव कुछ न बोला। पड़ोस में जिसका घर था, उस व्यक्ति ने तीन गिलास में कच्ची शराब ढाली। केशव ने देखा तो मना किया।

– मय दारू नई पीवंव!

– तुम अतिथि हाववं। थोर किन पी लौ। शरम के बात नइ हे। हम नागा बाबा ल बताय बर नइ जाबो!

– दारू सब दुस्करम के जड़ हे जी! मय नइ पीववं!

– जंगल म रहना हय हाड़–तोड़ मिहनत करना हय। बिना उम्मीद अउ मकसद के जीना हय..... दारू न रहै त आदमी चार दिन के बदला दू दिन म मर जाय!

– मय बीड़ी पीहुं जी!

उनमें से एक ने उसे बीड़ी और माचिस दी। फिर स्वयं का गिलास खाली किया। एक ने केशव के गिलास की शराब अपने गिलास में ढाल ली। दूसरे ने डिब्बे से अपना गिलास फिर भर लिया। वे दोनों मिर्च में नमक लगाकर बीच–बीच में चख भी रहे थे। प्याज खा रहे थे।

– हमार संग दारू पी लौ त तुमन ल खाना भी मिलहि।

– मय कभू दारू नइ पीयेंव जी!

– आज पी लौ!

– जबरदस्ती हे का जी? केशव बोला, लेकिन फिर स्वयं डर गया। रात का यह आश्रय भी छोड़ना पड़ा तो वह जंगल के अंधेरे में कहां जायेगा!

– जबरदस्ती नइ हे। हम पीवत हन। तहू ल देवत हन।..... महुंआ के फूल मुंह म त डारे होबे ? ये वो फुल के रस है, बस!

– अच्छा, थोरकुन दे दी जी!

उन्होंने अपना गिलास फिर भरा और केशव का भी। केशव ने सांस रोकी और गट्–गट् हलक के अंदर शराब उतार ली। महुंए की तेज गंध उसे विचलित कर गई। उन दोनों ने अपना तीसरा गिलास साफ किया। इतने में खाना आ गया। भाजी, दाल और भात सभी भोजन में जुट गये। भोजन के बाद गांजे का दौर शुरू हुआ केशव का सिर चकरा रहा था। नींद भी आ रही थी। मगर उन दोनों के जागते वह सो नहीं सकता था। गांजे का दौर चलने लगा। केशव को भी उन्होंने सहभागी बनाया। एक ने कहा–

–नागा बाबा, कभू कोनो बाई संग सोय हस ?

– नइ त.....काबर जी?

– दुनिया ल ओकर बिना कइसे जान पाहू ?

– ये जरूरी हे का जी?

– अगर संसार ल पकड़हू नइ त छोड़हू काला? संयासी बने के पहिले संसार ल जान त लौ!

– मय जान गेंव जी!

– का जान गे?

– यही के, ये दुनिया आनी–जानी हे। कुछु अपन नइ

हे।.....सबला एक दिन मरना हे!

–अगर मरना तय हे, अउ कुछु अपन नइ ते, दूसर के घलो कुछु नइ हे!.....फिर त मजा लूट के मरना ठीक हे!

–दारू आदमी ल तामसी बना देथे। तुम नई.....ये दारू बोलत हे!

–दारू त अब तुम घलो पीये हौ। तुमहु तामसी हो गय!

– मय त आप लोगन के मनराखन वास्ते पी गेंव। मगर भगवान सब देखत हे। वो दण्ड दिही।

– कोन ल दण्ड दिही, जी!

– हम तोला दारू घलो पीयान अऊ दण्ड घनो पान ?. .....अच्छा देखत हन, दण्ड कोन पाथे!

गांजे की पाइप में अंगार डालने के लिए एक चिमटा पास रखा था। हाथ भर लम्बा। एक व्यक्ति ने चिमटा उठाया और 'झम्म' से केशव की पीठ पे दे मारा। केशव घराबकर उठ खड़ा हुआ। दूसरे व्यक्ति ने पहले वाले से चिमटा छीन लिया!.....अरे अइसे नइ.....अइसे लगा!

दूसरे ने झमा–झम केशव को पीटना शुरू कर दिया। केशव को लगा, अब यहाँ खैर नहीं। ये लोग उसे मार ही डालेंगे। वह प्राण बचाकर अंधेरे में भागा। पहाड़ और साल–वृक्षों के बीच अंधेरा और घना लगा रहा था। केशव असमंजस में था। किधर भागे। कहां छिपे। कुछ ही दूर पर उसे एक घर नजर आया। इस घर के बाहर भी धान–पैरा का ऊंचा टीला था। उसने पलट कर देखा। मारने वाले दोनों व्यक्ति पीछे नहीं थे। उसने झटपट पैरा हटाया। घुसने और छिपने की जगह बनायी। रात भर वह वहीं पड़ा रहा। शरीर चिमटे की मार से व्याकुल था, नींद नहीं आयी। सुबह की पहली किरण के सथ वह पैरा से बाहर निकला। आसपास कोई दिखाई न दिया। वह धीरे–धीरे सामने खड़े मंदागिरि पर चढ़ने लगा।

सुबह शराबियों का होश ठिकाने आया। वे जंगल के आदिवासी थे। एक सन्यासी को अकारण मारने का पाप मन में डर पैदा कर गया। अपनी करनी पर पछतावा हुआ। उन्होंने मंदागिरि ग्राम में उसकी तलाश की। वह कहीं न मिला। अतिप्रातः साल के बीज बटोरने निकली एक महिला से उनकी मुलाकात हुई। उससे पूछताछ की। उस महिला ने बताया कि घंटा भर पहले उसने एक लड़के को मंदागिरि पहाड़ पर जाते देखा है। वे दोनों भी पहाड़ पर चढ़ने लगे। जब ये मंदागिरि पर पहुंचे तो सुबह के नौ बज रह थे। गर्मी की धूप अभी से तेज होने लगी थी। एक गुफा के सामने छाया में उन्होने केशव को लेटे हुए देखा। वह अपनी घिघियाती जुबान से दुर्गासप्तशती का पाठ कर रहा था। अपनी आहट पाकर वह कहीं भाग न जाये, इसलिए ये दबे पांव उसकी ओर बढ़ने लगे। पहाड़ पर साल के अलावा, तेंदु, गुलशुखरी, बेल, आंवला, आदि के वृक्ष खड़े थे। वृक्षों से लगी अनेक लतायें लटक रहीं थीं। भ्रम होता था, ये लतायें जमीन से ऊपर गईं या ऊपर से जमीन पर आईं हैं! एक मोटी लता पर उनके पांव पड़ गये। वह लता आंवले के वृक्ष पर चढ़ी थी। आंवले की एक डाल पर, जिसमें लता ने भी अपना विस्तार किया था, मधुमक्खी का एक छत्ता लटक रहा था। लता हिली तो छत्ता भी हिल गया। क्रोधित मधुमक्खियों ने उन दोनों पर धावा बोला।

यक–ब यक वे चिल्ला पड़े। केशव घबरा कर उठ खड़ा हुआ। उन्हें अपनी ओर बेतहाशा भागते देख वह थर–थर कांपने लगा। इस पहाड़ पर चढ़ने–उतरने के रास्ते पर तो वे दोनों ही थे। और किसी रास्ते की केशव को खबर नहीं थी। अभी–अभी ही तो वह इस पर चढा था। पहाड़ की भुलभुलैयाओं और रक्त–सिराओं से अपरिचित था। पीछे खाईं थी। भागने का कोई मौका नहीं था। नागा बाबा और उसके युवा शिष्यों का भी ऊपर कहीं अता–पता न था शायद वे कल संध्या को ही पहाड़ से उतर कर चले गये थे। केशव आंखें बंद कर एक चट्टान के सहारे खड़ा हो गया।उसके ओंठ बुदबुदाने लगे–हे भगवान, हे गौतम ऋषि, ये मानुष जात ले बचा।

मगर वे दोनों मानुष–जात दौड़ते हुए केशव के करीब पहुंचे और उसके चरणों से लिपट गये। अपने छत्ते से अधिक दूरी अथवा पर्याप्त मजा चखा देने की तृप्ति अथवा संयोगवश मधुमक्खियों ने उनका पीछा छोड़ दिया। अपने छत्ते में लौट गयीं। दर्द से कहराते शराबियों ने केशव को दण्डवत प्रणाम किया। क्षमा मांगी। निवेदन किया कि उनकी रात की गलतियों को माफ कर नीचे गांव चले। वह जब चाहे, उनके यहां रहे। उसके भोजन–पानी का सारा प्रबंध वे दोनों करेंगे। मगर केशव ने गर्दन हिला कर लौटने से इंकार कर दिया। रात की पिटाई उसे अच्छी तरह याद थी।

वे दोनों शराबी वापस लौट गये। गांव पहुंचकर उन्होंने केशव की बड़ी प्रशंसा की। उसे चमत्कारी, गुणी सन्यासी बताया।.....मधुमक्खियों ने कैसे उन पर आक्रमण किया था और वे फिर कैसे केशव के कहने पर वापस लौट गई थीं! केशव पहुंचा हुआ बाबा है! देखने और बोलने में अजीब लगता है तो क्या हुआ। उसके हाथों में बड़ा जस है। वह

मंदागिरि पर ही रहना चाहता है। उसे कोई कष्ट नहीं होना चाहिये। हम गांव वालों की जिम्मेदारी है। वह हमारे पहाड़ पर डेरा डाले है। यह हमारा और मंदागिरि का सौभाग्य है। अब जो भी व्यक्ति मंदागिरि पर जाये, अपने साथ एक बाल्टी पानी और खाने का कुछ सामान जरूर साथ लेकर जाये!

केशव को मंदागिरि– पहाड़ पसंद आ गया था। मंदागिरि पर दो–तीन जगहें ऐसी थीं, जहां गर्मी में भी थोड़ा–बहुत पानी चट्टानों के बीच भरा रहता था। जंगली फलों के वृक्ष और कंदमूल भी बहुत थे। सबसे गजब यह पहाड़ ही था, जो ऊपर बहुत ही आकर्षक और कुछ–कुछ समतल था। इसी पर अजीबोगरीब आकृतियों की चट्टानें थी। इन्हीं चट्टानों में लोग ऋषि पत्नी अहिल्या, भीम का हथियार, डोलन पत्थर, धान कुटने का बरतन, रौताइन आदि का आरोपण करते थे। चारों तरफ का नजारा और ताजी मनभावन ठंडी हवा छोड़कर वापस नीचे आने का मन न करता था। प्रकृति से जिनका जुड़ाव नहीं है, उनकी बात अलग है। केशव तो प्रकृति का ही अंग था। उसके लिए खुशी की एक और बात यहां थी। आबादी की अभाव!

केशव जल्दी ही प्रसिद्ध हो गया। पहले ग्राम मंदागिरि, मेचका, गादुलाबाहरा फिर खालगढ़, लीलांज आदि ग्रामों में उसकी प्रसिद्धि फैली। बाद में दूर–दराज के गांव में भी उसका नाम चमत्कारी–बालक के रूप में लिया जाने लगा। सांकरा, नगरी–सिहावा, मैनपुरी से से भी लोग उसके दर्शन को आने लगे। मंदागिरी पर चढ़ने वाला व्यक्ति अपने साथ भेंट की सामग्री के अलावा एक बाल्टी पानी लेकर जरूर चढ़ता। बाहर से आये दर्शनार्थियों को पानी और प्लास्टिक की बाल्टी का इंतजाम ग्राम मंदागिरि से ग्रामीणों द्वारा करवा दिया जाता। दर्शनार्थियों से उन्हें कुछ मिल जाता। लौटते समय बाल्टी वापस कर दी जाती। ग्राम मंदागिरी के भाग जाग गये। नये–नये दर्शनार्थियों, जान पहचान और रिश्तेदारों के आने से मंदागिरि ग्राम में एक नयी हलचल शुरू हो गयी। ग्रामीण बढ़ा–चढ़ा कर केशव से अपनी निकटता का बखान करते न थकते। केशव के नये–नये चमत्कार वे स्वयं गढ़ते और लोगों को चमत्कृत करते।

मंदागिरि पर्वत पर एक बड़ा सा पत्थर का कोटर था। दर्शनार्थियों द्वारा लाया गया पानी उसी कोटर में डाल दिया जाता। एक बड़ी सी गुफा में जो दूसरी ओर खाई में खुलती थी, भेंट की सामग्री, भोजन आदि रख दिया जाता था। वहीं एक गुफा मे ऋषि–गौतम की मूर्ति थी। लोग वहां पूजा–अर्चना करते। केशव के प्रत्यक्ष दर्शन भी करना चाहते, मगर यह मुश्किल था। इधर लोगों की भीड़ बढ़ती जा रही थी और उधर केशव की घबराहट।

वह लोगों से बात करने से बचता। लोग तरह–तरह के सवाल करते। उसे उत्तर न सूझता। वह मौन धारण कर लेता। अकसर वह अलग–अलग गुफाओं में छिपा बैठा नागा बाबा की दी दुर्गासत्पशती का हिज्जा कर–कर पाठ करता। उसके पल्ले कुछ पड़ता नहीं था, मगर मन को तसल्ली मिलती। इधर उसके दर्शन को आये लोग प्रतीक्षा करते–करते थक जाते और पर्वत से यूं ही नीचे उतर जाते। कुछ हठी दर्शनार्थी विभिन्न गुफाओं में उसे तलाशने लगते। केशव एक से दूसरी गुफा में जा छिपता। कम ही लोग उसे ढूंढ पाते। जिसे उसके दर्शन हो गये, वह अपने को धन्य समझता।

बुजुर्ग नागा बाबा को मचकुंद आश्रम में छोड़कर बाकी युवा–बाबा अमरकंटक लौट गये थे। बुजुर्ग बाबा ने मंदागिरि पर केशव के होने और उसकी प्रसिद्धि के किस्से सुने तो वह घबरा गये। अब इस इलाके में उनकी उपेक्षा न होने लगे! वह एक दिन अकेले ही मचकुंद–आश्रम से मंदागिरि की ओर चल पड़े। जब नागा बाबा मंदागिरि पर जा पहुंचे तो उन्हें एक अन्य व्यक्ति वहां नजर आया। उसने पर्वत पर अपना स्थायी आवास बना रखा था। यह रमेशर था। गादुल–बाहरा का रहवासी। बुजुर्ग था, मगर किशोर केशव का अंधभक्त बन गया था। शाम के चार बज रहे थे। दर्शनार्थी प्रायः सुबह से दोपहर तक ही रहते थे। रमेशर चौबीस घंटे पहाड़ पर पड़ा रहता। खाने–पीने की उसे भी चिंता न थी। चढ़ावा केशव और उसके लिए काफी होता। अपने खाने के बाद वे दोनों बाकी भोजन जंगली जानवरों के लिए भी छोड़ दिया करते थे।

रमेशर नागा बाबा को पहचानता था। पुराना भक्त था। देखते ही दौड़कर उनके चरणों में लोट गया। बाबा ने पूछा–रमेशर, तुम्हारी टांगें तो बेकार हो गई थीं, चल फिर नहीं पाते थे। लोगों ने बताया था! यहां तुम पहाड़ पर चढ़े दौड़ रहे हो?

रमेशर ने गद्‌गद् होकर कहा– केशव महाराज के कृपा है, बाबा! पहिले चार कदम चले म मोर टांग दुखन लागत रहाय। केशव महराज के दर्शन करे के एक दिन इच्छा होइस! घर ले निकलेंव त फेर पाछु पलट के नइ देखेंव। पांव के दुख पहाड़ चढ़ै म घलो नई जनाइस। सब केशव महराज के कृपा हे!

नागा बाबा ने आसपास नजर दौड़ाकर रमेशर से केशव

के बारे में पूछा तो रमेशर ने उन्हें बताया कि अभी दो घंटे और रूकना पड़ेगा। वह स्वयं प्रकट हो जायेगा। उसकी खोज करना बेकार है। अकेला जाने कहां–कहां चला जाता है। छिप भी जाता है। दर्शनार्थियों से मिलना उसे अच्छा नहीं लगता। कभी मन होता है तो खुद बाहर आ निकलता है। आजकल तो वह बातचीत भी नहीं करता। जाने कौन–सी जड़ी–बूटी उसने चख ली है कि उसकी जुबान बंद हो गई है।.....मगर अब तो इस जंगल पहाड़ के जानवर भी उसको इज्जत देते हैं। सब उसे पहचानने लगे हैं। परसों रात को आश्रम में हम धूनी रमा कर बैठे थे। एक काला तेंदूआ आया। धूनी के दूसरी तरफ बैठ गया। मैं तो डर के कांपने लगा। मगर केशव आंखे बंद किये पड़ा रहा। कुछ देर बाद आंखे खोली और अजीब–सी आवाज निकाली। वह भयानक जीव उठा और पीछे पलट कर गायब हो गया। फिर वह दिखा नहीं। दूसरे तेंदूए अकसर कभी–भी रात में यहां आ निकलते हैं। केशव के पास से ऐसे गुजर जाते हैं जैसे वे तेंदुए नहीं गांव के कुत्तें हों। भालू तो रात में लगभग रोज आते हैं। भेड़िये और लकड़बग्घे भी आ जाते हैं। अपने भोजन से बचा हम उनके लिए पत्थर पर रख देते हैं। वे आते हैं और खाते हैं। थोड़ा–बहुत वे वापस में झगड़ भी लेते हैं। मगर फिर लौट जाते हैं। हमारा कुछ नुकसान नहीं करते!..... आप थक गये होंगे! बैठिये, मैं आपके लिए पानी–शरबत लाता हूं।

संध्या के छह बज रहे थे। सूरज डूब चुका था, मगर रोशनी अभी भी थी। केशव प्रकट हुआ। नागा बाबा को देखकर 'बां–बां' करता हुआ पास आया और बाबा के पैर छू लिये। नागा बाबा ने उसे आशीर्वाद दिया! इशारे से केशव ने नागा बाबा से कहा कि आप यहां कुछ दिन रहिये। यहां कोई तकलीफ नहीं होगी!

एक दिन रिसगांव के आदिवासी केशव के दर्शन करने को आये। उन्होंने कुछ दिनों पहले एक हिरण का शिकार किया था। हिरण का मांस तो उन्होंने खा लिया था, मगर समस्या थी, खाल का क्या करें? तय हुआ कि इसे केशव महराज को भेंट कर दिया जाये। नागा बाबा के रहते ही उन्होंने केशव को वह खाल भेंट कर दी। नागा बाबा की नजर उस खाल पर जम गयी। एक हफ्ते तक वह मंदागिरि में रहे, उसी खाल पर बैठते–सोते रहे। एक दिन नागा बाबा वापस मचकुंद–आश्रम सोंढूर जाने को उद्धत हुए। केशव को अपने साथ चलने को कहा। केशव का मंदागिरि से नीचे उतरने का मन न था। बाबा की जिद में एक दिन के लिए सोंढूर जाने को तैयार हो गया। चलते समय नागा बाबा ने हिरण की खाल अपनी बगल में दबा ली। केशव ने मना किया, मगर गुरू बाबा नहीं माने।

दूसरे दिन, दोपहर बारह बजे वे सोंढूर के करीब पहुंच रहे थे। आगे–आगे गुरू बाबा, पीछे–पीछे केशव। अचानक दो वन–रक्षकों ने आकर नागा–बाबा को पकड़ लिया। वे वन रक्षक कानून के पक्के पुजारी थे। धर्म और धार्मिकों से उन्हें मतलब न था। बाबा से उन्होंने हिरण की खाल जब्त कर ली। एक ने उनका हाथ पकड़ लिया। पास ही उनका आफिस था। उन्हें खींच कर ले चलने लगे। वहां रेंजर–साहब बैठे थे। नागा बाबा ने वन रक्षक से हाथ छुड़ाते हुए कहा– हिरण की यह खाल मेरी नहीं है। मुझे तो केशव ने भेंट किया है!

गुरू–बाबा के आचरण पर केशव को दुख और आश्चर्य हुआ। गुरू के साथ उसे भी घेर लिया गया। आफिसर ने दोनों के खिलाफ संरक्षित जानवर मारने और खाल रखने के आरोप में चालान पेश कर दिया।..... ..... हाथ से खाल गई और मन से चैन। धमतरी में इन दोनों की पेशी हुई। मुकदमा चला। अंत में दोनों को छह माह की सजा हुई।

अचानक आई इस विपत्ति से मंदागिरि की रौनक जाती रही। मंदागिरि पर वही सनातन सन्नाटा छा गया। पहाड़ पर पानी और चढ़ावा लेकर चलने का क्रम टूट गया। दर्शनार्थियों के दर्शन दुर्लभ हो गये। रमेशर भी मंदागिरि छोड़कर अपने गांव गादुल–बाहरा लौट गया। उसका कहना था, मंदागिरि के जानवर अब हिंसक हो गये हैं।

छह माह की सजा भोग कर नागा बाबा और केशव बाहर आये। नागा बाबा ने मंदागिरि और सोंढूर के मचकुंद–आश्रम से तौबा कर ली। वह इधर लौटे नहीं। कुछ कहते वह लापता हो गये। कुछ कहते, वह धमतरी से ही सीधे अमरकंटक के लिए रवाना हो गये। जो भी हो, इतना सच है कि फिर दण्डकारण्य के इन जंगलों और पहाड़ों ने उनका चेहरा दोबारा नहीं देखा।

और केशव! वह धमतरी से वापस मंदागिरि पहुंचा। मगर अब पहाड़ पर चढ़ने की उम्मीद नहीं हुई वह विक्षिप्त–सा हो गया। उसके बाल औरतों की तरह लम्बे और अस्नान की वजह से बालों में जगह–जगह गांठे पड़ गई थीं। किसी की दी हुई लाल साड़ी लपेटे वह घूमता–घिसटता मंदागिरि के आसपास के गांवों में दिखायी दे जाता। मंदागिरि से उतरने के बाद उसका मान भी उतर गया था। छह माह की जेल ने

उसकी बाकी कसर पूरी कर दी।

जंगल के छोटे–छोटे गांव–टोले में घूमते उसे कभी कोई खाना दे जाता। लोगों की भीड़भाड़ से, उनके सवालों से वह और ज्यादा बिदकने लगा था। उसे वो ही जगहें भली लगतीं, जहां बिना सवाल किये भोजन मिल जाता। भोजन के पहले या बाद में जहां सवाल उछलने की सम्भावना होती, ऐसी जगहों पर वह जाता ही न था।

एक दिन भिलाई नगर से मास्टरों की एक टोली जंगल–पहाड़ घूमने उधर पहुंची। इनकी मोटर साइकिलों की आवाज से भयभीत केशव खालगढ़ के एक घर की ओर छिप गया। भोजन मिलने की आशा से वह अभी–अभी जंगल से इधर निकलता था। मगर मास्टरों की पैनी नजर उस पर पड़ ही गयी। केशव भागने को हुआ। मगर मास्टरों ने उसे घेर लिया। पढ़े–लिखे लोगों से घिर कर केशव कांप गया।

उन मास्टरों में एक सेन मास्टर थे। आम लोगों की तरह उनके एक हाथ में ज्ञान–विज्ञान और दूसरे में लिजलिजी आस्था का पिटारा था। केशव की पूर्व–प्रचलित प्रसिद्धि उन्हें ज्ञात थी। उन्हें विश्वास था, केशव में अब भी वह शक्ति है। केशव को देखते ही वह मोटरसाइकिल से उतरे! घिरे हुए केशव के पैरों में माथा टेक उन्होंने व्यथित स्वर में कहा– हे केशव महाराज, मुझे मेरी पारिवारिक और नौकरी में आयी मुसीबतों से रक्षा करो।.....महाराज!

केशव भयवश आंख बंद किये था। ऐसे मौके पर ऐसे आस्थावादियों को उल्लू बनाने का पाठ वह कभी सीख न पाया था। वह स्वयं संकटग्रस्त और दयनीय था। उसने मन ही मन भगवान को याद किया। दुर्गा–सप्तशती के पदों को उच्चारने की कोशिश की! उसके होंठ हिले।

केशव के होठों को हिलते देख सेन मास्टर ने समझा, उन्हें आशीर्वाद दिया जा रहा है। उन्होंने फिर पांव छूए। जेब से इक्कीस रूपये निकाले, गिने और केशव के पैरों के पास धर दिये।

इतने में आसपास मोटर साइकिलों में बैठे दूसरे मास्टर भी केशव के करीब आने के लिए अपनी गाड़ियां खड़ी करने लगे। उन्हे मुफ्त के 'कीमती' आशीर्वाद से वंचित रह, ठगे जाने का भय सता बैठा। इधर केशव का भय यक–ब–यक शक्तिशाली हुआ। सेन मास्टर ने जैसे ही पांव छोड़े, उसने घने जंगल की ओर दौड़ लगा दी। उसे इस बात की सुध भी नहीं रही कि इस बेतहाशा दौड़ के कारण उसकी लिपटी हुई साड़ी खुल गई है! वह दिगम्बर हो चुका है! ●

मरूथल का यात्री 'निराला'

सोनिका प्रकाशन

लक्ष्मीगंज लश्कर, ग्वालियर–1

मूल्य रू150.00

महाकवि निराला को पहली बार प्रोफेसर डॉक्टर लक्ष्मण सहाय ने नव वैशिष्टय कलेवर में प्रस्तुत किया, वैशिष्टय यह है कि इसमें 'निराला' में मानववाद को आधार बनाया गया। उन्होंने सिद्ध भी कर दिया कि 'निराला' अपनी रचनाधर्मिता के सृजन वैविध्य के उन आयामों को स्थापित कर पाए, जिसकी थाह पाना हर किसी के लिए संभव नहीं तो कष्टप्रद अवश्य है। डा. लक्ष्मण सहाय, समीक्षक, विश्लेषक तो हैं, परन्तु उनकी अन्वेषक की दृष्टि व्यापक एवं वेधक है, इसीलिए उनकी कृति 'निराला' के समग्र आयमों को स्पर्श करती है। यह कृति 'निराला' के व्यक्तित्व कृतित्व के अबूझ, गूढ़ गांठों को सुलझा कर, निराला के मात्र कृतित्व की ही नहीं उनके अन्तरमन की पीड़ा, दर्द, विद्रोह, परदुःख, कातरता का सन्तुलित समन्वयिक पक्ष बना दिया। उनकी कृति साहित्य सुधि पाठकों के लिए नए प्रतिमान रचेगी जो उनको संतुष्टि दे, जिज्ञासा शान्त करने में समर्थ है।

इस कृति में डा. सहाय ने निराला, तुलसी, कबीर को समकक्ष रखा, क्योंकि तीनों ही समाज में व्याप्त विद्रूपताओं पर तीक्ष्ण व्यंग्य किए हैं, व्यंग्य करने में दुखी विद्रोही रचनाकार ही सक्षम एवं समर्थ होता है। 'मरूथल का यात्री निराला' में डॉ. सहाय ने निराला की मानसिक, सामाजिक, वैयक्तिक, आयामों को रेखांकित कर इसे सम्पूर्ण समग्र, सार्थक अभिधान बना दिया। डॉ. सहाय की सोच बस्तर के साहित्य सर्जक 'लाला जगदलपुरी' की सापेक्ष समानता, एक निकष की तरह कसी गई शोधकर्ता, छात्रों, पाठकों के लिए एक अमूल्य प्रेरणास्पद ग्रंथ सिद्ध होगी। इस कृति के आवरण पृष्ठ चित्रांकन के लिए इन्दु जैन व उपयुक्त शीर्षक के लिए डा. साधना भी प्रभासित रहेंगी। ●

गहन अंधकार में राह दिखाते जुगनू

डॉ. सतीशराज पुष्करणा
संरक्षक
हाइकु–तांका विकास परिषद्
पो. महेन्द्रू, पटना–800006
(बिहार)

परिवर्तन शाश्वत सत्य है। कोई भी क्षेत्र इसका अपवाद नहीं है। साहित्य में भी समय–समय पर सहज–स्वाभाविक परिवर्तन होते रहे हैं, आज भी हो रहे हैं। एक ज़माना था जब साहित्य में प्रबंध –काव्य के प्रकारों यथा– महाकाव्य, खंडकाव्य, चम्पूकाव्य आदि काव्य–विधाओं का बोल –बाला रहा।

जैसे–जैसे समय व्यतीत होता गया और आदमी क्रमशः अपनी बढ़ती आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु अधिकाधिक धनोपार्जन हेतु मशीन बनता गया। तात्पर्य यह है कि आदमी इस सीमा तक व्यस्त हो गया कि उसे स्वयं हेतु तथा अपने समय के विषय में सोचने–समझने के लिए अवकाश नहीं मिल पाता था। किन्तु आदमी को आदमी बने रहने हेतु पढ़ना भी अनिवार्य है। इसी अनिवार्यता ने लघुआकारीय विधाओं को जन्म दिया।

इस क्रम में 'मुक्तक काव्य' का सृजन आंरभ हुआ। मुक्तक काव्य से तात्पर्य प्रबंध–काव्य से इतर सभी काव्य प्रकार जैसे गीत, चतुष्पदी (मुक्तक), दोहा, ग़ज़ल, सॉनेट, कविता इत्यादि और बाद में तॉका, सेदोका, चोका, रेगा, और हाइकु क्रमशः प्रकाश में आये और कम्प्यूटर एवं इंटरनेट के युग में क्रमशः ये विधाएं विकास की यात्रा पर चल पड़ीं। इन सभी जापानी काव्य विधाओं में अब हाइकु अपेक्षाकृत अधिक लोकप्रियता अर्जित करता जा रहा है।

डॉ0 सत्यभूषण वर्मा के अनुसार, ''हाइकु मूलतः जापानी काव्य–शैली है। जापानी साहित्य में मुरोमुचि युग (1335–1573) में आशु–कविता प्रतियोगिताओं में प्रायः एक व्यक्ति पूर्वांश की रचना करके उत्तरांश की रचना दूसरे के लिए छोड़ देता था। इस प्रकार दो या दो से अधिक व्यक्ति मिलकर काव्य–रचना करते थे, जिसको 'रेगा' कहते थे। इसी 'रेगा' की आंरभिक पंक्तियां 'होक्कु' कहलायीं । इन तीन पंक्तियों में क्रमशः 5, 7, 5 वर्ण तब भी थे और आज भी अनुशासन वही है।'' यही 'होक्कु' धीरे–धीरे गम्भीर और अभिजातवर्गीय पर हावी होने के साथ–साथ सर्वसाधारण में भी लोकप्रिय बन गया। कालान्तर यह 'होक्कु' अथवा 'रेगा' के बन्धन से मुक्ति पाकर स्वतंत्र कविता के रूप में प्रतिष्ठित हुआ और 'होक्कु' के नये नाम से जापानी कविता की एक महत्वपूर्ण विधा के रूप में विकसित हुआ।'' (डॉ0 सत्यभूषण वर्मा, जापानी हाइकु और आधुनिक हिन्दी कविता, पृष्ठ–1)

यहां यह जान लेना अनिवार्य है कि क्रमशः 5, 7, 5 वर्णों की कोई भी त्रिपदीय रचना 'हाइकु' नहीं हो सकती। काव्य के अन्य रूपों की तरह ही 'हाइकु' में भी कवित्व होना इसकी अनिवार्य शर्त है। इतना ही नहीं, इस अनुशासन में लिखा कोई वाक्य भी हाइकु की संज्ञा प्राप्त नहीं कर सकता।

उदाहरणार्थ देखें–

'अपने आप/चलकर ही कोई/लक्ष्य पाता है' यों तो यह हाइकु अनुशासन को पूरा करता है। किन्तु यह अपने आप में तीन पंक्तियों एवं 5, 7, 5, वर्णों में सजा हुआ एक पूरा वाक्य है। अतः इसे हाइकु नहीं कहा जा सकता।

कलात्मक हाइकु कविता के प्रारंभिक कवि यामानिक सोकान (1465–1553) और आराकिदा मोरिताके सन् (1472–1549) थे। हाइकु को पुनर्जीवन मिला कवि तोइतोकु (1570–1653) के द्वारा , इन्होंने तॉका और 'रेगा' की विधिवत् शिक्षा प्राप्त की थी। ये हाइकु के कुशल शब्द–शिल्पी थे। इनके बाद निशियासा सोइन (1604–1682) ने हाइकु को और अधिक सुशिल्पित किया। ओनित्सुरा ने हाइकु को प्रौढ़ता प्रदान की। इनसे पूर्व हाइकु बौद्धिक–विनोद मात्र था परन्तु ओनित्सुरा ने हाइकु में जीवन–दर्शन की अभिव्यक्ति करके उसे गंभीरता और महनीयता प्रदान की। इनकी हाइकु कविता में प्रकृति–वर्णन की सहज संवेद्यता है। (डॉ0 सत्यभूषण वर्मा)

ऐसा माना जाता है कि हाइकु को साहित्यिक प्रतिष्ठा प्रदान कराने का पूर्ण श्रेय मात्सो बाशो (1644–1664) को जाता है। तत्काल हाइकु–काव्य–रचना हेतु ये तीन गुण निध ार्ारित किये गये–1. एकाकीपन की स्थिति का चित्रण, 2. एकाकीपन की स्थिति की सहज संवेद्य अनुभूति और 3. सहज अभिव्यक्ति, तीनों गुण उदाहरण स्वरूप उनके 1683 में सृजित निम्न हाइकु में सहज ही देखे जा सकते हैं–

सूखी डाल/काक एक एकाकी/रात पतझर की।

यहां ध्यातव्य है कि बाशो के हाइकु–काव्य में मात्र प्रकृति –चित्रण ही नहीं है अपितु उसमें अध्यात्म का आवरण भी स्पष्ट है। इनके बाद बुसोन, इस्सी और शिकि ने भी इस विध ा के विकास में उल्लेखनीय भूमिका का निर्वाह किया।

जैसा कि आरंभ में ही मैंने कहा कि परिवर्तन एक शाश्वत प्रक्रिया है। अतः हाइकु भी इस प्रक्रिया का अपवाद नहीं हैं। समय के साथ–साथ कवियों की सोच बदली। समाज के मूल्य एवं उसकी सच्चाइयां भी क्रमशः बदलती गयीं। देशकाल एवं परिवेश ने भी हाइकु को विषय के स्तर पर प्रभावित किया।

हाइकु जब अज्ञेय एवं कवीन्द्र रवीन्द्रनाथ टैगोर के साथ अनुवाद के रूप में जापान से भारत आया तो इसकी अन्तर्वस्तु

में बदलाव स्वाभाविक ही था, वह हुआ भी। भारत की अन्य कई भाषाओं में तो इसके अनुशासन को भी बदल दिया, किन्तु हिन्दी में इसके अनुशासन को तो ज्यों–का–त्यों ही रहने दिया पर अन्तर्वस्तु के स्तर पर हमारे देश की स्थिति एवं समस्याएं हाइकु के केन्द्र में स्वाभाविक रूप से आ गयीं।

डॉ0 सत्यभूषण वर्मा ने हाइकु का गंभीर अध्ययन करने के पश्चात् हिन्दी में हाइकु को इन शब्दों में परिभाषित किया, ''हाइकु शुद्ध अनुभूति की, सूक्ष्म आवेगों की अभिव्यक्ति की कविता है। प्रकृति के साथ हाइकु का अनन्य सम्बन्ध है। हाइकु जीवन के किसी अनुभूत सत्य की ओर इंगित करती हुई सांकेतिक काव्य–अभिव्यक्ति है। शिल्प की दृष्टि से हाइकु 5, 7, 5 वर्ण क्रम की तीन पंक्तियों की सत्रह अक्षरी अतुकान्त कविता है। इसमें आकार की लघुता का गुण भी हैं और यही उसकी सीमा भी है।''

डॉ0 वर्मा की परिभाषा बाशो के हाइकु–गुणों पर ही आध ाारित है। यहां यह स्पष्ट करना अनिवार्य है कि हिन्दी में तुकान्त हाइकुओं का प्रचलन रामायण चतुर्वेदी के अनुसार, ''1960 ई0 में इलाहबाद से प्रकाशित दैनिक समाचार–पत्र 'भारत' के साप्ताहिक परिशिष्ट में प्रकाशित रवीन्द्र नाथ शुक्ल के हाइकुओं में देखा जा सकता है, जिन्हें उन्होंने 'त्रिशूल' की संज्ञा से विभूषित किया है। उनके तुकान्त हाइकु (त्रिशूल) का उदाहरण देखें–

राधिका नारी/कृष्ण को लगती है/बहुत प्यारी

इसके पश्चात् अतुकान्त हाइकुओं का सृजन तो हुआ ही इसी के साथ–साथ तुकान्त हाइकुओं का प्रचलन भी खूब चला, आज भी दोनों रूप ससम्मान चल रहे है।

हाइकु को डॉ0 आदित्य प्रताप सिंह , डॉ0 नामवर सिंह , डॉ0 शैल रस्तोगी , डॉ0 सुधा गुप्ता, डॉ0 भगवतशरण अग्रवाल, राजेन्द्रमोहन त्रिवेदी 'बन्धु', रामेश्वर काम्बोज हिमांशु, डॉ0 सतीशराज पुष्करणा, डॉ0 भावना कुँअर, डॉ0 हरदीप कौर सन्ध ाु, इत्यादि ने अपने–अपने ढंग से परिभाषित किया।

उपर्युक्त सभी विद्वानों की परिभाषाएं अपने–अपने ढंग से हाइकु तक पहुंचने तथा हाइकु को समझने में सहायक हैं और सभी में एक बात जो सामान्य है कि हाइकु 5, 7, 5 की त्रिपदीय काव्य–रचना है जिसमें कवित्व के होने की अनिवार्यता है। कवित्व का अर्थ कि शब्दों का क्रम यति के अनुसार होना चाहिए तथा उसमें सांकेतिकता और विराम–चिन्हों का उपयोग इस तरह होना चाहिए की हाइकु की लय यानी प्रवाह किसी भी दशा में भंग न हो। कुल लघुआकारीय विधा की विशेषता है, हालांकि इस निष्कर्ष पर बहुत कम हाइकु की खरे उतरते हैं।

वस्तुतः कुछ लोग हाइकु को इतनी लघु कविता समझकर कुछ भी लिख देते हैं वस्तुतः सही एवं श्रेष्ठ हाइकु लिखा नहीं, रचा जाता है। किसी भी रचना को रचना बहुत ही कठिन कार्य होता है, रचना तो स्वयं अपना सम्पूर्ण रूप लेकर इल्हाम होती है।

इस दिशा में अपने–अपने ढंग से कवीन्द्र रवीन्द्रनाथ ठाकुर, अज्ञेय, प्रभाकर माचवे, सत्यभूषण वर्मा, डॉ0 आदित्य प्रताप सिंह, डॉ0 भागवत शरण अग्रवाल, डॉ0सुधा गुप्ता, डॉ0 शैल रस्तोगी, रामेश्वर काम्बोज 'हिमांशु', उर्मिला कौल, राजेन्द्रमोहन त्रिवेदी 'बन्धु', डॉ0 रमाशंकर श्रीवास्तव, डॉ0 सतीशराज पुष्करणा, डॉ0 भावना कुँअर, डॉ0 हरदीप कौर सन्ध ाु, रचना श्रीवास्तव, डॉ0 मिथिलेशकुमारी मिश्र, डॉ0 पुष्पा जमुआर, हारून रशीद 'अश्क', नरेन्द्र प्रसाद 'नवीन', सिद्धेश्वर, डॉ0 अनीता राजेश, डॉ0 अर्चना त्रिपाठी, नलिनीकान्त, जितेन्द्र राठौर, डॉ0 सावित्री डागा, पूर्णिमा वर्मन, शैल कुमारी सक्सेना, कमला निखुर्पा, डॉ0 रामनिवास 'मानव', जैनी शबनम, पवन कुमार जैन, उषा अग्रवाल 'पारस', नीलमेन्दु सागर, सदाशिव कौतुक, डॉ0 रामदेव प्रसाद, श्याम खरे, मिर्ज़ा हसन नासिर, राजकुमारी शर्मा 'राज़', राजेन्द्र वर्मा, रामनिवास पंथी, रामसनेही लाल शर्मा 'यायावर', डॉ0 विद्या बिन्दु सिंह, त्रिलोकी सिंह ठकुरेला, सूर्यदेव पाठक 'पराग', सुभाष नीरव, राजकुमार 'प्रेमी', संतलाल विश्वकर्मा, श्रीकृष्ण कुमार त्रिवेदी, सुदर्शन रत्नाकार, सुरेश उजाला, डॉ0 उर्मिला अग्रवाल, डॉ0 रागिनी प्रताप, डॉ0 अरूणा दुबलिश इत्यादि ने इस विधा के विकास में महती योगदान दिया हैं। यहीं यह बताना प्रासंगिक होगा कि डॉ0 सत्यभूषण वर्मा ने हिन्दी–हाइकु सृजन कभी नहीं किया। किन्तु हिन्दी का प्रथम हाइकु–कवि कृष्ण बालदुवा माने जाते हैं, जिन्होंने 1947 में अनेक हाइकु रचे। उदाहरण स्वरूप उनका एक हाइकु यहां प्रस्तुत किया जा रहा है–

बादल देख/खिल उठे सपने/खुश किसान

जहां प्रथम हाइकु कवि बालकृष्ण बालदुवा माने गये हैं वहीं प्रथम हाइकु–संग्रह 'शाश्वत क्षितिज' को मान्यता प्राप्त हुई। इस संग्रह के प्रेणता डॉ0 भागवत शरण अग्रवाल हैं जिनका यह संग्रह 1985 को प्रकाश में आया था। वस्तुतः यही वह वर्ष है जहां से हाइकु ने पूरी त्वरा से विकास के सोपान चढ़ने आरंभ किये थे।

इसकी आरंभिक विकास–यात्रा में 'हाइकु भारती', 'त्रिशूल', 'हाइकु दर्पण', 'हाइकु मंजूषा', 'हाइकु यात्रा', 'शब्दाणु', 'हाइकु मंजरी', 'तृतीय', 'ककुक और हाइकु गुंजन' इत्यादि पत्र–पत्रिकाएं इस विधा को पूर्णतः समार्पित थीं जिनका जीवन बहुत लम्बा नहीं रहा। इनमे 'हाइकु' एवं 'त्रिशूल' तो अन्तर्देशीय पत्रिकाएं थीं। 'त्रिशूल' अभी भी कभी–कभी प्रकाशित होती है। 'तृतीय' एवं 'ककुक और हाइकु' फोल्डर पत्रिकाएं थीं।

'हाइकु दर्पण' एवं 'हिन्दी–हाइकु' नेट पत्रिकाएं हैं किन्तु 'हिन्दी हाइकु' प्रत्येक दृष्टि से जहां नियमित है वहीं इसकी उत्कृष्टता भी उल्लेखनीय है। 'त्रिवेणी' में तॉका, चोका, सेदोका के साथ–साथ हाइकु भी नियमित प्रस्तुत किये जाते है। 'हिन्दी–हाइकु' का हाइकु के विकास में सबसे उत्कृष्ट योगदान है।

वर्तमान में तो प्रायः साहित्यिक पत्र–पत्रिकाएं इस विधा को ससम्मान स्थान दे रही हैं जिनकी सूची बहुत लम्बी है। दर्जनों पत्रिकाओं ने समय–समय पर विशेषांक भी प्रकाशित करके इस विधा के विकास में अपनी सराहनीय भूमिका का निर्वाह किया है।

प्रायः हाइकुकारों के एकल संग्रह प्रकाश में आ चुके हैं, जिनकी संख्या अनुमानतः दो–सौ के आसपास हो सकती हैं संपादित संकलन भी लगभग एकाध सौ हो सकते हैं। किन्तु यह संख्या संतोषजनक नहीं है। इस विधा पर केन्द्रित शोध ाकार्य भी हुए हैं जिनकी संख्या लगभग छः है। किन्तु इस विध ाा पर कुछेक आलोचनात्मक पुस्तकों का प्रकाशन भी हुआ है जिनकी संख्या एक दर्जन से अधिक नहीं है। इस विधा के विकास में कुछ गोष्ठियां एवं सम्मेलन भी हुए हैं जिनकी संख्या बहुत उत्साहवर्द्धक नहीं है। विगत तीन वर्षो से 'हाइकु–तॉका विकास परिषद्' (पटना) संस्था काफी सक्रिय है जिसकी रिपोर्ट्स पत्र–पत्रिकाओं एवं नेट पर देखी–पढ़ी जा सकती है। तात्पर्य यह है अभी हाइकु को काव्य की अन्य विधाओं के समक्ष सीना तान कर पूरी ताक़त से खड़ा होने हेतु प्रत्येक क्षेत्र में पर्याप्त कार्य समर्पणभाव से करना होगा।

प्रसन्नता का विषय है हाइकु के विकास में संकलनों की श्रृंखला में अब एक नया नाम 'हाइकु व्योम' जुड़ने जा रहा है। इस संकलन की संपादक चर्चित हाइकु–लेखिका उषा अग्रवाल 'पारस' हैं। इस संकलन में नये–प्रौढ़ कुल मिलाकर 54 कवियों के 15–15 हाइकु यानी कुल 54×15 हाइकु संकलित किये गये हैं। इस संकलन में प्रौढ़ हाइकुकारों ने भी अपनी भावी प्रौढ़ता एवं ख्याति के द्वार पर जोरदार दस्तक दी है। शेष सभी नये कवि–कवयित्रियों भी सुखद संभावनाओं से लबालब हैं। इन सभी हाइकु कवि/कवयित्रियों के योगदान से 'हाइकु व्योम' पूरी ताकत से खड़ा हुआ है।

इस व्योम के नीचे सारा जगत् है जिसे हम अपनी छत मानते हैं वहां अपने को सुरक्षित भी समझते हैं किन्तु यदि उस छतरी में छेद हो जाए तो क्या होगा? पानी टपकेगा/बरसेगा यानी वर्षा होगी।

वर्षा ऋतु पर अनेक हाइकुकारों ने अनेक श्रेष्ठ हाइकु रचे हैं किन्तु डॉ0 सुधा गुप्ता के निम्न हाइकु की बात ही कुछ और है। हाइकु देखें–

आकाश–छत/छेदों भरी छतरी/टपक रही

वर्षा का चित्रण जिस शिल्प में किया गया है वह अद्वितीय है। इसमें कहीं भी सपाटता का स्पर्श तक नहीं है, हर शब्द अपने आप में काव्यात्मकता लिये है। शब्दों का क्रम एवं अनुशासन विषयानुकूल सटीक है। पूरा हाइकु प्रतीकात्मकता एवं सांकेतिकता में प्रस्तुत होने के बावजूद संप्रेषणीयता का कहीं कोई संकट नहीं है। हाइकु पढ़ते ही पूरा हाइकु अपने भावार्थ के साथ ही स्वतः संप्रेषित हो जाता है।

वर्षा–ऋतु को चित्रित करते अनेक हाइकु इस संकलन में संकलित हैं। किन्तु जो बहुत ही सहजता से प्रथम दृष्टि में ही किसी का ध्यान आकर्षित कर लें, वो क्षमता क्रमशः सुषमा अग्रवाल एवं केशव शरण के क्रमशः निम्न हाइकुओं में है –

बरखा आयी/विरहन का मन/सुलगा गयी
छाते ही घटा/विरह से विदग्ध/हृदय फटा

उपर्युक्त दोनों ही हाइकुओं में प्रेमी–प्रेमिका के विरह का चित्रण है जिसमें परोक्षतः सावन माह का चित्रण हुआ जो बिना किसी अतिरिक्त श्रम के सहज ही संप्रेषित हो जाते हैं। यही इन हाइकुओं की विशेषता है।

'हाइकु–व्योम' में अनेक कवि–कवयित्रियों ने प्रायः सभी ऋतुओं को अपने–अपने ढंग से, अपने–अपने हाइकुओं का विषय बनाया है। इनमें कतिपय ऐसे है जों पढ़ते ही हृदय की गहराइयों में उतर जाते हैं। ऐसे ही हाइकुओं में अनिता ललित का निम्न हाइकु विशेष रूप से अवलोकनीय है–

सर्दी की धूप/शर्माकर झांकती/छिप–छिपके

प्रसन्नता का विषय है कि इस संकलन में हाइकु की परंपरा को ध्यान में रखकर प्रकृति पर केन्द्रित पर्याप्त हाइकुओं का सृजन किया गया है। इसके साथ ही रचनाकरों ने समसामयिक समस्याओं पर भी स्वयं को केन्द्रित किया है। हमारी समसामयिक समस्याओं में अधिक रेखांकित करने योग समस्या प्रदूषित पर्यावरण की है। पर्यावरण समसामयिक समस्या होने के साथ–साथ प्रकृति से भी सम्बद्ध है। इस विषय पर भी इस संकलन में अनेक–अनेक हाइकु हैं जो हमारा ध्यान आकर्षित करते है। किन्तु उनमें से भी उमेश महादोषी, कमलेश चौरसिया, रूबी महतो के क्रमशः निम्न हाइकु विशेष रूप से महत्वपूर्ण हैं। देखें–

ये गंगा मैली/साधो, करता कौन?/तोड़ो न मौन
तिनका लिये/चिड़िया थक गयी/डाली न मिली
मोर दुखी है/गुदगदाता नहीं/अब मौसम

इन तीनों हाइकुओं की भिन्न–भिन्न संवेदनाएं हैं जो पर्यावरण को प्रदूषण से बचाने हेतु सोचने को विवश करती है। प्रकृति–चित्रण करती अन्य जिन रचनाकारों की रचनाएं हृदय–स्पर्श करती हैं उनमें उषा 'अग्रवाल 'पारस', डॉ. भावना

कुंअर, अशोक आनन इत्यादि प्रमुख है। हालांकि इन तीनों रचनाकारों की संवेदनाएं बिल्कुल भिन्न हैं। अशोक आनन का हाइकु शब्दों में एक सुन्दर दृश्य या चित्र कह लें, प्रस्तुत करता है। ऐसा दृश्य प्रायः सभी ने जीवन में कभी–न–कभी अवश्य देखा होगा किन्तु इसे हाइकु का विषय बहुत ही सुन्दर ढंग से अशोक आनन ने बनाया। यह चित्र व्याख्या की मांग नहीं करता यह स्वमेव ही संप्रेषित है। किन्तु यह एक सुन्दर एहसास तो अवश्य करा देता है। हाइकु देखें–

तितलियों ने/फूलों पे फिर लिखे/होठों से श्लोक

डॉ0 भावना कुँअर का हाइकु बहुत ही सुन्दर ढंग से 'ओस' को चित्रित करता है। डॉ0 भावना कुँअर सिद्धहस्त हाइकु–कवयित्री हैं, यह उनके हाइकु–संग्रहों से भी स्पष्ट है। हाइकु देखें एवं महसूस करें ओस को–

मोती की माला/टूटकर बिखरी/घास पे मिली

वस्तुतः यह हाइकु बहुत ही मुलायम एवं नाजुक है। यह ऐसा एहसास देता है कि इसका स्पर्श किया कि टूटकर गिर जाएगा..... मैला हो जाएगा।

उषा अग्रवाल 'पारस' जो इस संकलन की संपादक भी हैं, ने शताधिक हाइकु को रचा है। वह अपने हाइकुओं का पाठ भी बहुत सुन्दर ढंग से करती हैं। इनके हाइकुओं की विशेषता यह है कि उनमें भी प्रत्यक्ष तो कभी परोक्ष रूप से उनका आत्मविश्वास एवं उत्साह अपना सुखद एहसास कराता है। खूबी यह है कि वह अपनी बात कहने हेतु प्रकृति को ही अपनी अभिव्यक्ति का उपादान बनाती हैं, जिसमें प्रायः उनको सफलता मिलती ही है। इस संकलन में प्रकाशित मेरी बात को सत्यापित करता यह हाइकु देखा जा सकता है–

खूब बढ़ूंगी/चंदा, सूरज नहीं/नभ बनूंगी

ऐसा नहीं है कि इस संकलन में मात्र प्रकृति केन्द्रित हाइकु ही संकलित है, इसमें जीवन के शाश्वत एहसास के साथ–साथ जीवन के अन्य प्रायः सभी पक्षों पर केन्द्रित हाइकु भी संकलित हैं। अब कुछेक प्रेमपरक हाइकुओं की चर्चा यहां प्रासंगिक है। अगर गहराई तक जाकर विचार करें तो यह भी प्राकृतिक देन है। प्रेमपरक हाइकुओं में जिनके हाइकुओं ने दिल को छुआ है उन कुछेक कवि–कवयित्रियों में रामेश्वर काम्बोज 'हिमांशु', ब्रजेश नंदन, डॉ0 ज्योत्सना शर्मा, माला वर्मा, राजीव कुमार श्रीवास्तव 'नसीब', विनीता यादव इत्यादि प्रमुख है। यह सत्य है इन उपर्युक्त रेखांकित रचनाकारों के हाइकु प्रेम–संवेदना से जुड़े हैं, मगर फिर भी वे आपस में नितान्त भिन्न हैं। रामेश्वर काम्बोज 'हिमांशु' का हाइकु जहां प्रेम की पवित्रता के साथ–साथ सकारात्मकता के साथ प्रस्तुत करता है, वहीं ज्योत्सना शर्मा का हाइकु संघर्ष और प्रतीक्षा के पश्चात् मिले प्रेम को सकरात्मकता के साथ प्रस्तुत करता है। माला वर्मा का हाइकु सूफियाना प्रेम को प्रत्यक्ष करता है। ब्रजेश नंदन का हाइकु प्रेम की आवारगी को पेश करता है। राजीव कुमार श्रीवास्तव 'नसीब' का हाइकु वासनाभाव को हाइकु प्रत्यक्ष करता है यानी दैहिक प्रेम को महत्व देता है और विनीता यादव का हाइकु प्रेम हुए धोखे को सामने लाती हैं। यानी प्रेम के विभिन्न शेड्स को इन कवियों ने क्रमशः इस प्रकार सामने रखा है।

क्रमशः इनके उदाहरण भी देखें–

तेरी छुअन/मानो दे गया कोई/नया जीवन

स्याह थी रात/तेरी यादों ने आके/उजाला किया

एक लहर/उठती है मन में/तू मेरा है न ?

बावरा मन/डोलता इत–उत/जैसे पवन

समेटने को/बांहों से आसमान/तैयार मन

करके प्यार/धोखे से हरजाई/करते वार

यहां ध्यातव्य यह है राजीव का प्रस्तुत हाइकु जहां प्रेमपरक वहीं वह उत्साह एवं आत्मविश्वास से कुछ कर गुज़रने के भाव को भी बल देता हे। वस्तुतः कविता की यही तो विशेषता है कि अनेक बार एक ही कविता कई–कई अर्थ दे जाती है। यह विशेषता कविता को सफलता प्रदान करती है।

इस संकलन में चर्चित हाइकु कवयित्री डॉ0 हरदीप कौर सन्धु एवं पुष्पा जमुआर के मां एवं बच्चे के मध्य वात्सल्यभाव को दर्शाते बहुत ही उत्कृष्ट हाइकु हैं, जिन्हें हिन्दी के प्रतिनिधि ा हाइकुओं में शामिल किया जा सकता है। क्रमशः दोनो कवयित्रियों के हाइकु देखें–

गोद में नन्हीं/मां के आंचल ज्यों/खिली चांदनी

बालक हंसा/मां के आंगन में ज्यों/चांद उतरा

इन दोनों की संवेदना भी प्रायः एक है किन्तु प्रस्तुति भिन्न–भिन्न हैं। ये दोनों ही भावुक पाठकों को भावुकता के अन्तिम छोर तक ले जाने की क्षमता रखते हैं। यह इन हाइकुओं की अतिरिक्त विशिष्टता है।

इस संकलन में दार्शनिक हाइकु भी पर्याप्त हैं किन्तु जो पढ़ते ही हृदय की गहराइयों तक जाकर सोचने को विवश करे, वह मृणालिनी घुले का निम्न हाइकु है। देखें –

सांझ की बेला/अस्त होता सूरज/बड़ा अकेला

जीवन के अंतिम समय के विषय में प्रत्यक्ष करता है कि **आये भी अकेला, जाये भी अकेला, जाये भी अकेला, दो दिन की ज़िंदगी है, दो दिन का मेला** यही हर व्यक्ति के जीवन का सच है।

वर्तमान में साहित्य की ऐसी कोई भी विधा नहीं है जिसमें राजनीति पर चर्चा न हो। होनी ही चाहिए। क्योंकि इसका संबंध देश के संचालन से है अतः इसमें प्रत्येक देशवासी की

रूचि चाहिए। साहित्यकारों का भी यह दायित्व बनता है कि वह अपने समय की सच्चाइयों को निर्भय होकर अपने लेखन में व्यक्त करें, जो ऐसा नहीं करता, मेरी दृष्टि से वह ईमानदार साहित्यकार नहीं है। कारण हम अपने समय से मुंह नहीं मोड़ सकते। हमें मोड़ना भी नहीं चाहिए। हाइकुओं ने अपने दायित्व को समझा और राजनीति को केन्द्र में रखकर अनेक–अनेक हाइकु दिये हैं, किन्तु जो ध्यान खींचने के साथ–साथ सोच–विचार करने हेतु उत्प्रेरित भी करते हैं उनका उल्लेख यहां प्रासंगिक है। ऐसे रचाकारों में ऋतु सिन्हा, डॉ0 सुषमा सिंह, रवीन्द्र देवघरे 'शलभ', प्रवीण कुमार श्रीवास्तव इत्यादि के नाम उल्लेखनीय हैं। ऋतु सिन्हा रानीतिज्ञों की वर्तमान फितरत पर व्यंग्य करती हुई कहती है

सियासी खेल/गधे को भी आदमी/कहते लोग

रवीन्द्र देवघरे 'शलभ' भी राजनीतिज्ञों पर व्यंग्य की चोट करते हुए कहते है–

जय किसान/देश कृषि प्रधान/मरे किसान

प्रवीण कुमार श्रीवास्तव ने भी वस्तुतः राजनीतिज्ञों की गलीज़ राजनीति पर व्यंग्यात्मक प्रहार ही किया है –

बिना आग के/जला रहे हैं गांव/चुनावी दांव

डॉ0 सुषमा सिंह ने व्यंग्य का सहारा नहीं लिया किन्तु कलात्मक ढंग से राजनीतिज्ञों की सच्चाई को प्रतीकों के माध्यम से बहुत करीब से अपनी बात को प्रस्तुत करने में सफलता पायी है। हाइकु देखें–

रंगे सियार/हैं बड़े होशियार/करें शिकार

उपर्युक्त सभी हाइकु अपने–अपने ढंग के हैं जो अपनी भिन्न–भिन्न संवेदनाओं के कारण वांछित प्रभाव छोड़ने में सफल हुए है।

सुरेखा देवघर 'शर्मा' ने प्रशासन पर प्रहार किया कि स्वार्थ की अंधी दौड़ में लोगों ने कानून को गलत विश्लेषित करके उसे अंधा साबित करने की कुचेष्टता की है। ऐसे में आम आदमी बेचारा लाचार होकर सब सहने को विवश है। हाइकु देखें–

अंधा कानून/स्वार्थ की अंधी दौड़/हारा इंसान

अन्यान्य विषयों पर अनेक श्रेष्ठ हाइकु इस संकलन में मौजूद है जो अपनी सुखद उपस्थिति का एहसास भी कराते हैं किन्तु ग़रीबी को केन्द्र में रखकर वंदना सहाय ने जो हाइकु रचा है वह अद्भुत है, देखें –

भूखा क्या लिखे/उसे तो ये चांद भी/रोटी–सा दिखे

चांद का रोटी दिखना कोई नया बिंब नहीं है। अनेक उस्ताद शायरों ने इसका उपयोग किया है, किन्तु यहां चांद जिस रूप में आया है वह अपना वांछित प्रभाव छोड़ जाता है।

और अंत में अंधविश्वास से केन्द्र में रखकर रचा गया विभा रश्मि का यह हाइकु अवलोकनीय है–

अंध विश्वास/लौह–पाश में बंद/विकास मंद

यहां कवयित्री अंधविश्वास को नकारती है कि अंधविश्वास जिसने किया उसका विकास अवरूद्ध हो जाएगा और यह बात भी सत्य है।

इन कवि–कवयित्रियों के अतिरिक्त जिन कवि–कवयित्रियों के हाइकु अपना वांछित प्रभाव छोड़ने में समर्थ हैं उन कतिपय लोगों में डॉ0 रघुनंद चिले, अलका मिश्रा, डॉ0 कृष्णा श्रीवास्तव, कांता देवांगन, पायल लक्ष्मी सोनी, शोभना मित्तल 'शुभि', डॉ0 लता सुमन्त, प्रभा मेहरा, डॉ0 रेखा कक्कड़, सरिता भिवसरिया, श्रवण कुमार पाण्डेय इत्यादि का नाम भी लिया जा सकता है।

'हाइकु–व्योम' के हाइकुओं का अध्ययन करने के क्रम में बहुत सुखद अनुभव हुआ कि प्रौढ़ों के साथ नये लोग भी इस विधा के विकास में पर्याप्त रूचि ले रहे हैं, जो विधा के उज्जवल भविष्य की ओर संकेत करता है। नये लोगों ने हाइकु लिखने में काफी श्रम किया है किन्तु उन्हें अभी यह समझना बाकी है कि कवित्व किसे कहते हैं ? कवित्व को समझे बिना हाइकु तो क्या कोई भी काव्य–विधा श्रेष्ठता के साथ नहीं लिखी जा सकती है।

यहां मैं यह स्पष्ट करना चाहता हूं कि साहित्य में 'नया' अथवा 'प्रौढ़' वय के अनुसार नहीं माना जाता। साहित्य में आप जिस विधा को जितने समय से साध रहे हैं इस उम्र साधना की अवधि के अनुसार उन्हें साहित्य में 'नया' अथवा 'प्रौढ़' कहा जाता है।

देखने में ही यह विधा लघु है किन्तु इसके लिखने यानी कागज़ पर उतारने से पूर्व अपने भीतर काफी सोचने एवं विचार करने की आवश्यकता होती है। काफी चिंतन–मनन करना होता है। जब तक आपका चिंतन–मनन प्रौढ़ होकर हाइकु के अनुशासन को पूरा करते हुए सहज प्रवाह में अभिव्यक्त होने की स्थिति में न आ जाए, तब तक उसे काग़ज़ पर उतारने से परहेज करना चाहिए।

इस संकलन में हाइकुओं ने अनेक–अनेक श्रेष्ठ हाइकु दिये हैं और हाइकु विधा के विकास में अपना वांछित योगदान देना शुरू किया है। विश्वास है, भविष्य में भी वे इस विद्या का सृजन बराबर करते रहेंगे तो निश्चित है एक दिन वे अपने को यह कह पाने में समर्थ हो पायेंगे–

ऐ आसमान!/अपनी ऊँचाई पे/गर्व न कर, /कुछ और ऊँचा हो जा/ तो भी तुझे छू लूँगा। ●

उसने कहा था

बड़े–बड़े शहरों के इक्के–गाड़ीवालों की जबान के कोड़ों से जिनकी पीठ छिल गई हैं, और कान पक गए हैं, उनसे हमारी प्रार्थना है कि अमृतसर के बंबूकार्टवालों की बोली का मरहम लगावें। जब बड़े–बड़े शहरों की चौड़ी सड़कों पर घोड़े की पीठ चाबुक से धुनते हुए, इक्केवाले कभी घोड़े की नानी से अपना निकट–संबंध स्थिर करते हैं, कभी राह चलते पैदलों की आँखों के न होने पर तरस खाते हैं, कभी उनके पैरों की अँगुलियों के पोरों को चींथ कर अपने ही को सताया हुआ बताते हैं, और संसार–भर की ग्लानि, निराशा और क्षोभ के अवतार बने, नाक की सीध चले जाते हैं, तब अमृतसर में उनकी बिरादरीवाले तंग चक्करदार गलियों में, हर–एक लड्ढीवाले के लिए ठहर कर सब्र का समुद्र उमड़ा कर बचो खालसा जी। हटो भाई जी। ठहरना भाई। आने दो लाला जी। हटो बाछा, कहते हुए सफेद फेंटों, खच्चरों और बत्तकों, गन्नें और खोंमचे और भारेवालों के जंगल में से राह खेते हैं। क्या मजाल है कि जी और साहब बिना सुने किसी को हटना पड़े। यह बात नहीं कि उनकी जीभ चलती नहीं है; पर मीठी छुरी की तरह महीन मार करती हुई। यदि कोई बुढ़िया बार–बार चितौनी देने पर भी लीक से नहीं हटती तो उनकी बचनावली के ये नमूने हैं–हट जा जीणे जोगिए, हट जा करमाँवालिए, हट जा पुत्तां प्यारिए, बच जा लंबी वालिए। समष्टि में इनके अर्थ हैं, कि तू जीने योग्य है, तू भाग्योंवाली है, पुत्रों को प्यारी है, लंबी उमर तेरे सामने है, तू क्यों मेरे पहिए के नीचे आना चाहती है ? बच जा।

ऐसे बंबूकार्टवालों के बीच में हो कर एक लड़का और एक लड़की चौक की एक दुकान पर आ मिले। उसके बालों और इसके ढीले सुथने से जान पड़ता था कि दोनों सिख हैं। वह अपने मामा के केश धोने के लिए दही लेने आया था, और यह रसोई के लिए बड़ियाँ। दुकानदार एक परदेसी से गुथ रहा था, जो सेर–भर गीले पापड़ों की गड्डी को गिने बिना हटता न था।

'तेरे घर कहाँ है ?'

'मगरे में; और तेरे ?'

'माँझे में, यहाँ कहाँ रहती है ?'

'अतरसिंह की बैठक में, वे मेरे मामा होते हैं।'

'मैं भी मामा के यहाँ आया हूँ, उनका घर गुरू बाजार में हैं।'

इतने में दुकानदार निबटा, और इनका सौदा देने लगा। सौदा ले कर दोनों साथ–साथ चले। कुछ दूर जाकर लड़के ने मुसकरा कर पूछा,– 'तेरी कुड़माई हो गई?' इस पर लड़की कुछ आँखें चढ़ा कर धत् कह कर दौड़ गई, और लड़का मुँह देखता रह गया।

दूसरे–तीसरे दिन सब्जीवाले के यहाँ, दूधवाले के यहाँ अकस्मात दोनों मिल जाते। महीना–भर यही हाल रहा। दो–तीन बार लड़के ने फिर पूछा, तेरी कुड़माई हो गई ? और उत्तर में वही 'धत्' मिला। एक दिन जब फिर लड़के ने वैसे ही हँसी में चिढ़ाने के लिए पूछा तो लड़की, लड़के की संभावना के विरूद्ध बोली – 'हाँ हो गई।'

'कब ?'

'कल, देखते नहीं, यह रेशम से कढ़ा हुआ सालू। लड़की भाग गई। लड़के ने घर की राह ली। रास्ते में एक लड़के को मोरी में ढकेल दिया, एक छावड़ीवाले की दिन–भर की कमाई खोई, एक कुत्ते पर पत्थर मारा और गोभीवाले के ठेले में दूध ा उड़ेल दिया। सामने नहा कर आती हुई किसी वैष्णवी से टकरा कर अंधे की उपाधि पाई। तब कहीं घर पहुँचा।

2

'राम–राम, यह भी कोई लड़ाई है। दिन–रात खंदकों में बैठे हड्डियाँ अकड़ गई। लुधियाना से दस गुना जाड़ा और और मेंह और बरफ ऊपर से। पिंडलियों तक कीचड़ में धँसे हुए हैं। जमीन कहीं दिखती नहीं, – घंटे–दो–घंटे में कान के परदे फाड़नेवाले धमाके के साथ सारी खंदक हिल जाती है और सौ–सौ गज धरती उछल पड़ती है। इस गैबी गोचे से बचे तो लड़े। वह नगरकोट का जलजला सुना था, यहाँ दिन में दस जलजले होते हैं। जो कहीं खंदक से बाहर साफा या कुहनी निकल आई तो चटाक से गोली लगती है। न मालूम बेईमान मिट्टी में लेटे हुए हैं या घास की पत्तियों में छिपे रहते हैं।'

'लहनासिंह, और तीन दिन हैं। चार तो खंदक में बिता ही दिए। परसों रिलीफ आ जाएगी और फिर सात दिन छुट्टी। अपने हाथों झटका करेंगे और पेट–भर खा कर सोये रहेंगे। उसी फिरंगी मेम के बाग में – मखमल का–सा हरा घास है। फल और दूध की वर्षा कर देती है। लाख कहते हैं, दाम नहीं लेती। कहती है, तुम राजा हो, मेरे मुल्क को बचाने आए हो।'

'चार दिन तक एक पलक नींद नहीं मिली। बिना फेरे घोड़ा बिगड़ता है और बिना लड़े सिपाही। मुझे तो संगीन चढ़ा कर मार्च का हुक्म मिल जाय। फिर सात जरमनों को अकेला मार कर न लौटूँ, तो मुझे दरबार साहब की देहली पर मत्था टेकना नसीब न हो। पाजी कहीं के, कलों के घोड़े – संगीन देखते ही मुँह फाड़ देते हैं, और पैर पकड़ने लगते हैं।

यों अंधेरे में तो तीस–तीस मन का गोला फेंकते हैं। उस दिन धावा किया था– चार मील तक एक जर्मन नहीं छोड़ा था। पीछे जनरल ने हट जाने का कमान दिया, नहीं तो–'

'नहीं तो सीधे बर्लिन पहुँच जाते! क्यों ?' सूबेदार हजारासिंह ने मुसकरा कर कहा –'लड़ाई के मामले जमादार या नायक के चलाए नहीं चलते। बड़े अफसर दूर की सोचते हैं। तीन सौ मील का सामना है। एक तरफ बढ़ गए तो क्या होगा ?'

'सूबेदार जी, सच है,' लहनासिंह बोला – 'पर करें क्या ? हड्डियों–हड्डियों में तो जाड़ा धँस गया है। सूर्य निकलता नहीं खाईं में दोनों तरफ से चंबे की बावलियों के से सोते झर रहे हैं। एक धावा हो जाय, तो गरमी आ जाय।'

'उदमी, उठ सिगड़ी में कोले डाल। वजीरा, तुम चार जने बालटियाँ लेकर खाईं का पानी बाहर फेंको। महासिंह, शाम हो गई है, खाईं के दरवाजे का पहरा बदल ले।' – यह कहते हुए सूबेदार सारी खंदक में चक्कर लगाने लगे।

वजीरा सिंह पलटन का विदूषक था। बाल्टी में गँदला पानी भर कर खाईं के बाहर फेंकता हुआ बोला– 'मैं पाधा बन गया हूँ। करो जर्मनी के बादशाह का तर्पण!' इस पर सब खिलखिला पड़े और उदासी के बादल फट गए।

लहनासिंह ने दूसरी बाल्टी भर कर हाथ में दे कर कहा – 'अपनी बाड़ी के खरबूजों में पानी दो। ऐसा खाद का पानी पंजाब–भर में नहीं मिलेगा।'

'हाँ, देश क्या है, स्वर्ग है। मैं तो लड़ाई के बाद सरकार से दस घुमा जमीन यहाँ माँग लूँगा और फलों के बूटे लगाऊँगा।'

'लाड़ी होराँ को भी यहाँ बुला लोगे ? या वही दूध पिलानेवाली फरंगी मेम–'

'चुप कर। यहाँ वालों को शरम नहीं।'

'देश–देश की चाल है। आज तक मैं उसे समझा न सका कि सिख तंबाखू नहीं पीते। वह सिगरेट देने में हठ करती है, ओठों में लगाना चाहती है, और मैं पीछे हटता हूँ तो समझती है कि राजा बुरा मान गया, अब मेरे मुल्क के लिए लड़ेगा नहीं।'

'अच्छा, अब बोधसिंह कैसा है ?'

'अच्छा है।'

'जैसे मैं जानता ही न होऊँ! रात–भर तुम अपने कंबल उसे उढ़ाते हो और आप सिगड़ी के सहारे गुजर करते हो। होठों उसके पहरे पर आप पहरा दे आते हो। अपने सूखे लकड़ी के तखतों पर उसे सुलाते हो। आप कीचड़ में पड़े रहते हो। कहीं तुम न मांदे पड़ जाना। जाड़ा क्या है, मौत है, और निमोनिया से मरनेवालों को मुरब्बे नहीं मिला करते।'

'मेरा डर मत करो। मैं तो बुलेल की खड्ड के किनारे मरूँगा। भाई कीरतसिंह की गोदी पर मेरा सिर और मेरे हाथ के लगाए हुए आँगन के आम के पेड़ की छाया होगी।'

वजीरसिंह ने त्योरी चढ़ा कर कहा– 'क्या मरने–मारने की बात लगाई हैं ? मरें जर्मनी और तुरक ! हाँ भाइयाँ, कैसे–

दिल्ली शहर तें पिशोर नुं जांदिए,
कर लेणा लौंगां दा बपार मड़िए,
कर लेणा नाड़ेदा सौदा अड़िए –
(ओय) लाणा चटाका कदुए नुँ।
कद्दू बणाया वे मजेदार गोरिए,
हुण लाणा चटाका कदुए नुँ।।

कौन जानता था कि दाढ़ियों वाले, घरबारी सिख ऐसा लुच्चों का गीत गाएँगे, पर सारी खंदक इस गीत से गूँज उठी और सिपाही फिर ताजे हो गए, मानों चार दिन से सोते और मौज ही करते रहे हों।

3

दोपहर रात गई है। अँधेरा है। सन्नाटा छाया हुआ है। बोधसिंह खाली बिसकुटों के तीन टिनों पर अपने दोनों कंबल बिछा कर और लहनासिंह के दो कंबल और एक बरानकोट ओढ़ कर सो रहा है। लहनासिंह पहरे पर खड़ा हुआ है। एक आँख खाईं के मुँह पर है और एक बोधसिंह के दुबले शरीर पर। बोधसिंह कराहा।

'क्यों बोधा भाई, क्या है ?'

'पानी पिला दो।'

लहनासिंह ने कटोरा उसके मुँह से लगाकर पूछा – 'कहो कैसे हो ?' पानी पी कर बोधा बोला – 'कँपनी छूट रही है। रोम–रोम में तार दौड़ रहे हैं। दाँत बजे रहे हैं।'

'अच्छा, मेरी जरसी पहन लो!'

'और तुम ?'

'मेरे पास सिगड़ी है और मुझे गर्मी लगती है। पसीना आ रहा है।'

'ना, मैं नहीं पहनता। चार दिन से तुम मेरे लिए –'

'हाँ, याद आई। मेरे पास दूसरी गरम जरसी है। आज सबेरे ही आई है। विलायत से बुन–बुन कर भेज रही हैं मेमें, गुरू उनका भला करें।' यों कह कर लहना अपना कोट उतार कर जरसी उतारने लगा।

'सच कहते हो ?'

'और नहीं झूठ ?' यों कह कर नाँही करते बोधा को उसने जबरदस्ती जरसी पहना दी और आप खाकी कोट और जीन का कुरता भर पहन–कर पहरे पर आ खड़ा हुआ। मेम की जरसी की कथा केवल कथा थी।

आधा घंटा बीता। इतने में खाईं के मुँह से आवाज आई – 'सूबेदार हजारासिंह।'

'कौन लपटन साहब ? हुक्म हुजूर!' – कह कर सूबेदार तन का फौजी सलाम करके सामने हुआ।

'देखो, इसी दम धावा करना होगा। मील भर की दूरी पर पूरब के कोने में एक जर्मन खाईं है। उसमें पचास से ज्यादा जर्मन नहीं है। इन पेड़ों के नीचे–नीचे दो खेत काट कर रास्ता है। तीन–चार घुमाव हैं वहाँ पंद्रह जवान खड़े कर आया हूँ। तुम यहाँ दस आदमी छोड़ कर सब को साथ ले उनसे जा मिलो। खंदक छीन कर वहीं, जब तक दूसरा हुक्म न मिले, डटे रहो। हम यहाँ रहेगा।'

'जो हुक्म।'

चुपचाप सब तैयार हो गए। बोधा भी कंबल उतार कर चलने लगा। तब लहनासिंह ने उसे रोका। लहनासिंह आगे हुआ तो बोधा के बाप सूबेदार ने उँगली से बोधा की ओर इशारा किया। लहनासिंह समझ कर चुप हो गया। पीछे आदमी कौन रहे, इस पर बड़ी हुज्जत हुई। कोई रहना न चाहता था। समझा–बुझा कर सूबेदार ने मार्च किया। लपटन साहब लहना की सिगड़ी के पास मुँह फेर कर खड़े हो गए और जेब से सिगरेट निकाल कर सुलगाने लगे। दस मिनट बाद उन्होंने लहना की ओर हाथ बढ़ा कर कहा– 'लो तुम भी पियो।'

आँख मारते–मारते लहनासिंह सब समझ गया। मुँह का भाव छिपा कर बोला – 'लाओ साहब।' हाथ आगे करते ही उसने सिगड़ी के उजाले में साहब का मुँह देखा। बाल देखे। तब उसका माथा ठनका। लपटन साहब के पट्टियों वाले बाल एक दिन में ही कहाँ उड़ गए और उनकी जगह कैदियों से कटे बाल कहाँ से आ गए ?' शायद साहब शराब पिए हुए हैं और उन्हें बाल कटवाने का मौका मिल गया है ? लहनासिंह ने जाँचना चाहा। लपटन साहब पाँच वर्ष से उसकी रेजिमेंट में थे।

'क्यों साहब, हम लोग हिंदुस्तान कब जाएँगे?'

'लड़ाई खत्म होने पर। क्यों, क्या यह देश पसंद नहीं ?'

'नहीं साहब, शिकार के वे मजे यहाँ कहाँ ? याद है, पारसाल नकली लड़ाई के पीछे हम आप जगाधरी जिले में शिकार करने गए थे–'

'हाँ, हाँ–'

'वहीं जब आप खोते पर सवार थे और आपका खानसामा अब्दुल्ला रास्ते के एक मंदिर में जल चढ़ाने को रह गया था ? बेशक पाजी कहीं का – सामने से वह नील गाय निकली कि ऐसी बड़ी मैंने कभी न देखी थीं। और आपकी एक गोली कंधे में लगी और पुट्ठे में निकली। ऐसे अफसर के साथ शिकार खेलने में मजा है। क्यों, साहब शिमले से तैयार होकर उस नील गाय का सिर आ गया था न ? आपने कहा था कि रेजमेंट की मैस में लगाएँगे।'

'हाँ पर मैंने वह विलायत भेज दिया–'

'ऐसे बड़े–बड़े सींग! दो–दो फुट के तो होंगे ?'

'हाँ, लहनासिंह, दो फुट चार इंच के थे। तुमने सिगरेट नहीं पिया ?'

'पीता हूँ साहब, दियासलाई ले आता हूँ' – कह कर लहनासिंह खंदक में घुसा। अब उसे संदेह नहीं रहा था। उसने झटपट निश्चय कर लिया कि क्या करना चाहिए।

अँधेरे में किसी सोनेवाले से वह टकराया।

'कौन ? वजीरासिंह ?'

'हाँ, क्यों लहना ? क्या कयामत आ गई ? जरा तो आँख लगने दी होती ?'

'होश में आओ। कयामत आई है और लपटन साहब की वर्दी पहन कर आई है।'

'क्या ?'

'लपटन साहब या तो मारे गए है या कैद हो गए हैं। उनकी वर्दी पहन कर यह कोई जर्मन आया है। सूबेदार ने इसका मुँह नहीं देखा। मैंने देखा और बातें की है। सौहरा साफ उर्दू बोलता है, पर किताबी उर्दू। और मुझे पीने को सिगरेट दिया है ?'

'तो अब!'

'अब मारे गए। धोखा है। सूबेदार होराँ, कीचड़ में चक्कर काटते फिरेंगे और यहाँ खाईं पर धावा होगा। उठो, एक काम करो। पल्टन के पैरों के निशान देखते–देखते दौड़ जाओ। अभी बहुत दूर न गए होंगे। सूबेदार से कहो एकदम लौट आएँ। खंदक की बात झूठ है। चले जाओ, खंदक के पीछे से निकल जाओ। पत्ता तक न खड़के। देर मत करो।'

'हुकुम तो यह है कि यहीं–'

'ऐसी तैसी हुकुम की! मेरा हुकुम – जमादार लहनासिंह जो इस वक्त यहाँ सब से बड़ा अफसर है, उसका हुकुम है। मैं लपटन साहब की खबर लेता हूँ।'

'पर यहाँ तो तुम आठ हो।'

'आठ नहीं, दस लाख। एक–एक अकालिया सिख सवा लाख के बराबर होता है। चले जाओ।'

लौट कर खाईं के मुहाने पर लहनासिंह दीवार से चिपक गया। उसने देखा कि लपटन साहब ने जेब से बेल के बराबर तीन गोले निकाले। तीनों को जगह–जगह खंदक की दीवारों में घुसेड़ दिया और तीनों में एक तार सा बाँध दिया। तार के आगे सूत की एक गुत्थी थी, जिसे सिगड़ी के पास रखा। बाहर की तरफ जा कर एक दियासलाई जला कर गुत्थी पर रखने–

इतने में बिजली की तरह दोनों हाथों से उल्टी बंदूक को उठाकर लहनासिंह ने साहब की कुहनी पर तान कर दे मारा। धमाके के साथ साहब के हाथ से दियासलाई गिर पड़ी। लहनासिंह ने एक कुंदा साहब की गर्दन पर मारा और साहब 'ऑख! मीन गौट्ट' कहते हुए चित्त हो गए। लहनासिंह ने तीनों गोले बीन कर खंदक के बाहर फेंके और साहब को घसीट कर सिगड़ी के पास लिटाया। जेबों की तलाशी ली। तीन–चार लिफाके और एक डायरी निकाल कर उन्हें अपनी जेब के हवाले किया।

साहब की मूर्छा हटी। लहनासिंह हँस कर बोला – 'क्यों लपटन साहब ? मिजाज कैसा है ? आज मैंने बहुत बातें सीखीं। यह सीखा कि सिख सिगरेट पीते हैं। यह सीखा कि जगाधरी के जिले में नीलगाएँ होती हैं और उनके दो फुट चार इंच के सींग होते हैं। यह सीखा कि मुसलमान खानसामा मूर्तियों पर जल चढ़ाते हैं और लपटन साहब खोते पर चढ़ते हैं। पर यह तो कहो, ऐसी साफ–उर्दू कहाँ से सीख आए ? हमारे लपटन साहब तो बिन डेम के पाँच लफ्ज भी नहीं बोला करते थे।'

लहना ने पतलून के जेबों की तलाशी नहीं ली थी। साहब ने मानो जाड़े से बचने के लिए, दोनों हाथ में जेबों में डाले।

लहनासिंह कहता गया– 'चालाक तो बड़े हो पर माँझे का लहना इतने बरस लपटन साहब के साथ रहा है। उसे चकमा देने के लिए चार आँखे चाहिए। तीन महीने हुए एक तुरकी मौलवी तेरे गाँव आया था। औरतों को बच्चे होने के ताबीज बाँटता था और बच्चों को दवाई देता था। चौधरी के बड़ के नीचे मंजा बिछा कर हुक्का पीता रहता था और कहता था कि जर्मनवाले बड़े पंड़ित है। वेद पढ़–पढ़ कर उसमें से विमान चलाने की विद्या जान गए हैं। गौ को नहीं मारते। हिंदुस्तान में आ जाएँगे तो गोहत्या बंद कर देंगे। मंडी के बनियों को बहकाता कि डाकखाने से रूपया निकाल लो। सरकार का राज्य जाने वाला है। डाक–बाबू पोल्हूराम भी डर गया था। मैंने मुल्लाजी की दाढ़ी मूड़ दी थी। और गाँव से बाहर निकाल कर कहा था कि जो मेरे गाँव में अब पैर रक्खा तो –'

साहब की जेब में से पिस्तौल चला और लहना की जाँघ में गोली लगी। इधर लहना की हैनरी मार्टिन के दो फायरों ने साहब की कपाल–क्रिया कर दी। धड़ाका सुन कर सब दौड़ आए।

बोधा – चिल्लाया 'क्या है ?'

लहनासिंह ने उसे यह कह कर सुला दिया कि एक हड़का हुआ कुत्ता आया था, मार दिया और, औरों से सब हाल कह दिया। सब बंदूकें ले कर तैयार हो गए। लहना ने साफा फाड़ कर घाव के दोनों तरफ पट्टियाँ कर कर बाँधी। घाव मांस में ही थी। पटिट्यों के कसने से लहू निकलना बंद हो गया। इतने में सत्तर जर्मन चिल्लाकर खाई में घुस पड़े। सिक्खों की बंदूकों की बाढ़ के पहले धावे को रोका। दूसरे को रोका। पर यहाँ से आठ (लहनासिंह तक–तक कर मार रहा था – वह खड़ा था, और, और लेटे हुए थे) और वे सत्तर। अपने मुर्दा भाइयों के शरीर पर चढ़ कर जर्मन आगे घुस आते थे। थोडे से मिनिटों में वे–अचानक आवाज आई, 'वाह गुरूजी की फतह ? वाह गुरूजी का खालसा!! और धड़ाधड़ बंदूकों के फायर जर्मनों की पीठ पर पड़ने लगे। ऐन मौके पर जर्मन दो चक्की के पाटों के बीच में आ गए। पीछे से सूबेदार हजारासिंह के जवान आग बरसाते थे और सामने लहनासिंह के साथियों के संगीन चल रहे थे। पास आने पर पीछे वालों ने भी संगीन पिरोना शुरू कर दिया।

एक किलकारी और – अकाल सिक्खाँ दी फौज आई! वाह गुरूजी दी फतह! वाह गुरूजी दा खालसा ! सत श्री अकालपुरूख!!! और लड़ाई खतम हो गई। तिरेसठ जर्मन या तो खेत रहे थे यह कराह रहे थे। सिक्खों में पंद्रह के प्राण गए। सूबेदार के दाहिने कंधे में से गोली आरपार निकल गई। लहनासिंह की पसली में एक गोली लगी। उसने घाव को खंदक की गीली मिट्टी से पूर लिया और बाकी का साफा कस कर कमरबंद की तरह लपेट लिया। किसी को खबर न हुई कि लहना को दूसरा घाव – भारी घाव लगा है।

लड़ाई के समय चाँद निकल आया था, ऐसा चाँद, जिसके प्रकाश में संस्कृत कवियों का दिया हुआ क्षयी नाम सार्थक होता है। और हवा ऐसी चल रही थी जैसी वाणभट्ट की भाषा में 'दंतवीणोपदेशाचार्य' कहलाती। वजीरासिंह कह रहा था कि कैसे मन–मन भर फ्रांस की भूमि मेरे बूटों से चिपक रही थी, जब मैं दौड़ा–दौड़ा सूबेदार के पीछे गया था।

सूबेदार लहनासिंह से सारा हाल सुन और कागजात पा कर वे उसकी तुरंत–बुद्धि को सराह रहे थे और कह रहे थे कि

तू न होता तो आज सब मारे जाते।

इस लड़ाई की आवाज तीन मील दाहिनी ओर की खाईंवालों ने सुन ली थी। उन्होंने पीछे टेलीफोन कर दिया था। वहाँ से झटपट दो डाक्टर और दो बीमार ढोने की गाड़ियाँ चलीं, जो कोई डेढ़ घंटे के अंदर–अंदर आ पहुँची। फील्ड अस्पताल नजदीक था। सुबह होते–होते वहाँ पहुँच जाएँगे, इसलिए मामूली पट्टी बाँध कर एक गाड़ी में घायल लिटाए गए और दूसरी में लाशें रक्खी गईं। सूबेदार ने लहनासिंह की जाँघ में पट्टी बँधवानी चाही। पर उसने यह कह कर टाल दिया कि थोड़ा घाव है सबेरे देखा जाएगा। बोध ाासिंह ज्वर में बर्रा रहा था। वह गाड़ी में लिटाया गया। लहना को छोड़ कर सूबेदार जाते नहीं थे। यह देख लहना ने कहा – 'तुम्हें बोधा की कसम है, और सूबेदारनी जी की सौगंध है जो इस गाड़ी में न चले जाओ।'

'और तुम ?'

'मेरे लिए वहाँ पहुँच कर गाड़ी भेज देना, और जर्मन मुरदों के लिए भी तो गाड़ियाँ आती होंगी। मेरा हाल बुरा नहीं है। देखते नहीं, मैं खड़ा हूँ ? वजीरासिंह मेरे पास है ही।'

'अच्छा, पर–'

'बोधा गाड़ी पर लेट गया ? भला। आप भी चढ़ जाओ। सुनिए तो, सूबेदारनी होराँ को चिट्ठी लिखो, तो मेरा मत्था टेकना लिख देना। और जब घर जाओ तो कह देना कि मुझसे जो उसने कहा था वह मैंने कर दिया।'

गाड़ियाँ चल पड़ी थीं। सूबेदार ने चढ़ते–चढ़ते लहना का हाथ पकड़ कर कहा – 'तैने मेरे और बोधा के प्राण बचाए हैं। लिखना कैसा ? साथ ही घर चलेंगे। अपनी सूबेदारनी को तू ही कह देना। उसने क्या कहा था ?'

'अब आप गाड़ी पर चढ़ जाओ। मैंने जो कहा, वह लिख देना, और कह भी देना।'

गाड़ी के जाते लहना लेट गया। 'वजीरा पानी पिला दे, और मेरा कमरबंद खोल दे। तर हो रहा है।'

5

मृत्यु के पहले स्मृति बहुत साफ हो जाती है। जन्म–भर की घटनाएँ एक–एक करके सामने आती हैं। सारे दृश्यों के रंग साफ होते हैं। समय की धुंध बिल्कुल उन पर से हट जाती हैं।

++++

लहनासिंह बारह वर्ष का है। अमृतसर में मामा के यहाँ आया हुआ है। दहीवाले के यहाँ, सब्जीवाले के यहाँ हर कहीं, उसे एक आठ वर्ष की लड़की मिल जाती है। जब वह पूछता है, तेरी कुड़माई हो गई ? तब धत् कह कर वह भाग जाती है। एक दिन उसने वैसे ही पूछा, तो तो उसने कहा – 'हाँ, कल हो गई, देखने नहीं यह रेशम के फूलोंवाला सालू ? सुनते ही लहनासिंह को दुःख हुआ। क्रोध हुआ। क्यों हुआ ?

'वजीरासिंह, पानी पिला दे।'

++++

पचीस वर्ष बीत गए। अब लहनासिंह नं 77 रैफल्स में जमादार हो गया है। उस आठ वर्ष की कन्या का ध्यान ही न रहा। न–मालूम वह कभी मिली थी, या नहीं। सात दिन की छुट्टी लेकर जमीन के मुकदमें की पैरवी करने वह अपने घर गया। वहाँ रेजिमेंट के अफसर की चिट्ठी मिली कि फौज लाम पर जाती है, फौरन चले आओ। साथ ही सूबेदार हजारासिंह की चिट्ठी मिली कि मैं और बोधासिंह भी लाम पर जाते हैं। लौटते हुए हमारे घर होते जाना। साथ ही चलेंगे। सूबेदार का गाँव रास्ते में पड़ता था। और सूबेदार उसे बहुत चाहता था। लहनासिंह सूबेदार के यहाँ पहुँचा।

जब चलने लगे, तब सूबेदार बेढे में से निकल कर आया। बोला – 'लहना, सूबेदारनी तुमको जानती हैं, बुलाती हैं। जा मिल आ।'

लहनासिंह भीतर पहुँचा। सूबेदारनी मुझे जानती हैं ? कब से ? रेजिमेंट के क्वार्टरों में तो कभी सूबेदार के घर के लोग रहे नहीं। दरवाजे पर जा कर मत्था टेकना कहा। असीम सुनी। लहनासिंह चुप।

'मुझे पहचाना ?'

'नहीं।'

'तेरी कुड़माई हो गई–धत्–कल हो गई–देखते नहीं, रेशमी बूटोंवाला सालू–अमृतसर में–'

भावों की टकराहट से मूर्छा खुली। करवट बदली। पसली का घाव बह निकला।

'वजीरा, पानी पिला'–'उसने कहा था।'

++++

स्वप्न चल रहा है। सूबेदारनी कह रही है – 'मैंने तेरे को आते ही पहचान लिया। एक काम कहती हूँ। मेरे तो भाग फूट गए। सरकार ने बहादुरी का खिताब दिया है, लायलपुर में जमीन दी है, आज नमकहलाली का मौका आया है। पर सरकार ने हम तीमियों की एक घँघरिया पल्टन क्यों न बना दी, जो मैं भी सूबेदारजी के साथ चली जाती ? एक बेटा है।

फौज में भर्ती हुए उसे एक ही बरस हुआ। उसके पीछे चार और हुए, पर एक भी नहीं जिया। सूबेदारनी रोने लगी। अब दोनों जाते हैं। मेरे भाग! तुम्हें याद है, एक दिन ताँगेवाले का घोड़ा दहीवाले की दुकान के पास बिगड़ गया था। तुमने उस दिन मेरे प्राण बचाए थे, आप घोड़े की लातों में चले गए थे, और मुझे उठाकर दुकान के तख्ते पर खड़ा कर दिया था। ऐसे ही इन दोनों को बचाना। यह मेरी भिक्षा है। तुम्हारे आगे आँचल पसारती हूँ।

रोती–रोती सूबेदारनी ओबरी में चली गई। लहना भी आँसू पोंछता हुआ बाहर आया।

'वजीरासिंह, पानी पिला'–'उसने कहा था।'

++++

लहना का सिर अपनी गोद में रक्खे वजीरासिंह बैठा है। जब माँगता है, तब पानी पिला देता है। आधे घंटे तक लहना चुप रहा, फिर बोला –'कौन! कीरतसिंह ?'

वजीरा ने कुछ समझ कर कहा – 'हाँ।'

'भइया, मुझे और ऊँचा कर ले। अपने पट्ट पर मेरा सिर रख ले।' वजीरा ने वैसा ही किया।

'हाँ, अब ठीक है। पानी पिला दे। बस, अब के हाड़ में यह आम खूब फलेगा। चचा–भतीजा दोनों यहीं बैठ कर आम खाना। जितना बड़ा तेरा भतीजा है, उतना ही यह आम है। जिस महीने उसका जन्म हुआ था, उसी महीने में मैंने इसे लगाया था।' वजीरासिंह के आँसू टप–टप टपक रहे थे।

++++

कुछ दिन पीछे लोगों ने अखबारों में पढा–

फ्रांस और बेलजियम – 68 वीं सूची – मैदान में घावों से मरा – नं 77 सिख राइफल्स जमादार लहनासिंह।●

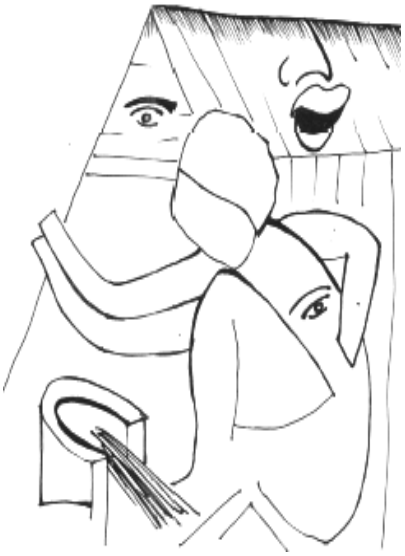

प्रेम की ऊंचाईयों और भावनाओं की गहराईयों की अनुपम प्रस्तुति है 'उसने कहा था'। वर्तमान परिदृश्य बदन को उघाड़ने, सुबह नजरे मिली और रात को तन, वाला है। इस दौर में नैतिकता का शिखर तो क्या चरण भी नहीं छुआ जा रहा है। लहनासिंह की कल्पना बनावटी और उसका प्यार दिखावटी समझे जाने वाले इस दौर में इस कहानी के बहाने क्या कहा जा सकता है, विचारणीय है। इस दौर में मात्र कुछ प्रश्न ही उठते हैं उत्तर तो अनंत होते हुए भी शून्य हैं।

खैर, इस दौर में जीवन के समस्त नैतिक स्तम्भों की तरह सच्चे प्रेम के स्तंभ को ढहते देखा जाना मजबूरी है फिर भी मानवीय स्वाभाव के चलते टीका आवश्यक है। इस कहानी से उठने वाला एक बिन्दु जो तीर की तरह उठ रहा है कि वायदा करके निभाना वह भी उस औरत का जो किसी दूसरे की हो चुकी है, वायदे का यूं महिमा मंडित करना बड़ा ही आंदोलनकारी लगता है। आंदोलनकारी विशेषण कुछ अतिशोयिक्ति पूर्ण लग रहा होगा पर क्या गलत है ? बाजारवाद की अवधारणा और वर्तमान में भोगे जा रहे सत्य में कहां से गलत महसूस हो रहा है ? लाभ के लिए जीने की सोच का बोलबाला है जिन अदृश्य भयों से डरकर समाज रास्ते में चलता था वे तो कब के तोड़े जा चुके हैं। उन भयों में नरक की अवधारणा, स्त्री के शीलभंग को दुनिया का सबसे बड़ा अनर्थ माना जाना, वचन की अवहेलना पर जान दे देना आदि प्रमुख हैं जो समाज को व्यवस्थित रखने में मुख्य कारक थे। इनका ध्वस्त होना न केवल इस भारतीय संस्कृति के विनाश का सूचक है बल्कि सामाजिक विकृति का जनक भी है। सामाजिक दुराचरण के बढ़ने की वजह से जहां एक ओर स्त्रियों की आजादी के प्रश्न खड़े हो गये हैं वहीं दूसरी और स्त्री स्वयं ही एक गढ्ढे की ओर बढ़े ऐसी व्यूह रचना जारी है। स्त्रियों के साथ किये गये भेदभावों को खोज–खोजकर उन्हें भड़काया जा रहा है, उनके लिए आजादी मांगी जा रही है। उन्हें सदियों से प्रताड़ित बताया जा रहा है, जबकि प्रताड़ना के संबंध में सच यह है कि दुनिया का हर व्यक्ति प्रताड़ित है किसी न किसी तरह। इस प्रताड़ना को पाने के लिए स्त्री योनि में ही आना जरूरी नहीं है। स्त्री की आजादी के प्रश्न के साथ ही उन्हें नये तरीकों से नई सोचों से उपभोग की वस्तु बनाया जा रहा है स्त्री आजादी की संतुष्टि के साथ।

बहरहाल लहनासिंह ने जिससे पहली नजर में प्यार कर लिया था और उसी वक्त 'तेरी कुड़माई हो गई ?' पूछकर अपना दिल भी तोड़ लिया था उसका ही सामना सूबेदारनी

के तौर पर होता है। और सूबेदारनी उससे अपने पति की रक्षा का वचन लेती है, लहनासिंह अपने शरीर पर गोली का घाव सहन करके भी अपने साहब की रक्षा करता है और आखिर में जान दे देता है।

ये 'वचन' ही तो वह कारक है जो 'उसने कहा था' कहानी और इस आलेख का जनक है। ये वही 'वचन' है जो कैकई ने राम से लेकर चौदह बरस जंगल में भटकने छोड़ा था। 'प्राण जाई पर वचन न जाई' की सोच के पीछे संकल्प की पराकाष्ठा है, नैतिकता की ऊंचाई है तो दायित्वबोध की आत्मा है। इस आत्मा को ही सरे राह पैरों से कुचल कर मारा जा रहा है। दायित्वबोध को कुचलने के पीछे क्या है, अनदेखा तो नहीं है। नैतिकता के समस्त पैमाने ध्वस्त हो चुके हैं।

एक पल को जरा सोचें कि यदि भारत सरकार देश में प्रचलित नोटों को लेने से इंकार कर दे और कह दे अभी के अभी ही ये कागज के टुकड़े हैं तो क्या होगा ? यदि बीमा कंपनियां कह दे कि हम बीमा का पैसा नहीं देंगे, बैंक कह दे कि हमने जमा पैसा हजम कर लिया है। इन परिस्थितियों में क्या होगा ? कौन जवाबदेह होगा ? कौन धोखेबाज होगा ? कौन किस पर विश्वास करेगा ? किस तरह देश चलेगा ? कैसे अराजकता नहीं फैलेगी ? इस तरह के कई प्रश्न मुंह उठाये आ खड़े होंगे तो कौन देगा जवाब ? किसके पास है इन परिस्थितियों से बाहर आने का रास्ता ? क्या कारण थे ऐसी परिस्थितियों के हावी होने के ? क्या ऐसा होना उचित है ?

इन सभी का उत्तर है 'वचन' की सार्थकता बनी रहे। मात्र एक छोटा सा शब्द 'वचन' ही है जो नैतिकता की उड़ान भरता है। रिश्तों के बीच भावनाओं को जन्म देता है। दायित्वबोध देता है। यदि शादी करके पति–पत्नी बन जायें तो इन वचनों की ही तो उपस्थिति से मां–बाप, बेटा–बेटी आदि रिश्तों में प्राण संचारित होते हैं। अगर ऐसा न हो तो पति क्यों पत्नी के लिए व्यवस्थायें करें और पत्नी क्यों पति के लिए क्यों घर छोड़कर आये ? क्या ऐसा मात्र यौनापूर्ति के लिए है ? मात्र यौनापूर्ति के लिए होता तो लोग शादी न करके हवस पूरी करते और स्वंच्छ जीवन जीते। बिल्कुल पश्चिम की तरह जहां नजर मिली तन की हवस की पूर्ति हो गई। बच्चे पालना पति–पत्नी की संयुक्त जवाबदारी नहीं हैं, अनाथ आश्रम हैं लाखों की तादात में। वैसे ही परिवार की जिम्मेदारी से दूर वृद्धाश्रम हैं। मात्र यौन आधारित जीवन की अवधारणा है। हमारे यहां भी इसके लिए प्रयास हो रहे हैं। संयुक्त परिवार तोड़ा जा चुका है। लिव–इन लागू है। गे कानून लागू नहीं, परन्तु मौन समर्थन है। आदि।

लिव–इन सीधे–सीधे यह नहीं समझाता कि जब तक मन करे मजे लो और शादी–वादी की जिम्मेदारियों से बचो, औरतें खाना नहीं बनायेंगी बाजार से पिज्जा, बर्गर, आइसक्रीम, चॉकलेट, आयेगा। खाओ पियो ऐश करो। पति–पत्नी दोनों कमायेंगे, अपनी शारीरिक जरूरतें पूरी करेंगे। जब मन भरा या किसी दूसरे पर नजर पड़ी, बदल लो, नया लिव इन।

ऐसा पहले सुनते थे कि कुछ 'पत्नी बदल' ग्रुप थे जो आपस में पत्नियां बदल–बदलकर नये आनंद की प्राप्ति करते थे। वेश्यावृति के नये तरीके कहकर, वेश्यावृति करने को मजबूर औरत का मजाक नहीं उड़ाना है यह तो स्वछंद यौनवृति का रूप है।

इन आनंदमयी, रसभरी योजनाओं के मनन से प्रश्न यह उठता है कि इन परिस्थितियों में समाज अराजक नहीं हो जायेगा ? यहां कई प्रगतिशील तुरंत ही कह उठेंगे कि क्या पश्चिम अराजक है ? उसने ही तो विश्व को विकास की तस्वीर से जीवंत रूप दिया है। वे प्रगतिशील आत्मचिंतन करें, जिन बिन्दुओं के कारण भारतीय संस्कृति को नकारा जाता है, आलोचना की जाती है, वे वही बिन्दु हैं जो समाज को जोड़कर जिम्मेदार बनाते हैं। इसके लिए किसी भौतिक कानून की जरूरत नहीं पड़ती है।

लहना सिंह धन्यवाद का पात्र है जिसने समाज को जोड़ने का संदेश दिया। प्यार बढ़ाने का संदेश दिया। अपने दिल में बसी प्यार की चिंगारी को ज्वाला बनाया पर उसे सार्थक रूप देकर समाज को संदेश सच्चा संदेश दिया। पश्चिम की संस्कृति को लात मारकर सूबेदार की जान बचाई न कि उसे मरवाकर खुद ही सूबेदारनी तक पहुंच गया।

साधुवाद लहनासिंह! तूने हमारी भारतीय संस्कृति का न केवल मान रखा बल्कि मजबूती प्रदान की। ●

नक्कारखाने की तूती

यह शीर्षक हमारे उन विचारों के लिए है जो लगातार हमारा दम घोंटते हैं परन्तु हम उन्हें आपस में ही कह सुन कर चुपचाप बैठ जाते हैं। चुप बैठने का कारण होता हैं हमारी 'अकेला' होने की सोच! इस सोच को तड़का लगता है इस बात से कि 'सिस्टम ही ऐसा है क्या किया जा सकता है, और ऐसा सोचना पागलपन है।' हर पान की दुकान, चाय की दुकान और ट्रेन के सफर में लगातार होने वाली ये हर किसी की समस्या होती है, ये चिन्ता हर किसी की होती है। और सबसे बड़ी बात कि समस्या का हल भी वहीं होता है। ऐसी समस्या और उसका हल जो दिमाग को मथ कर रख देता हैं उनका यहां स्वागत हैं। तो फिर देर किस बात की कलम उठाईये और लिख भेजिए हमें।

बड़े आश्चर्य की बात हैं दुनिया का हर आदमी शौच करता है और खुद ही साफ करता है वह अशुद्ध नहीं होता है। मां अपने बच्चों का शौच साफ करती है, घर के बुजुर्गों की सफाई घर वाले करते हैं। वे अशुद्ध या अछूत नहीं होते हैं फिर दुनिया को साफ–सुथरा रखने वाले कैसे अछूत हो जाते हैं?

ऐसे में तो यही सही हो सकता हैं जो गंदगी फैलाएगा वही सफाई करेगा। या फिर ये हो सकता है कि सफाई करने वाले सूअर से दूर रहकर, खुद भी साफ–सफाई से रहने लग जायें।

हमारे देश में एक गंदी सोच कायम है जो प्रत्येक व्यक्ति में है वह है, किसी भी काम की कमाई के हिसाब से उसे छोटा या बड़ा समझना; कार्य को भी और कार्य करने वाले को भी। आज नौकरी के सम्मान के बाद व्यापार का बोलबाला है। बढ़ई, लोहार, घड़ीसाज, टीवी/फ्रिज बनाने वाले, मजदूर, कंम्प्यूटर बनाने वाले आदि लोगों को छोटा समझा जाता है। विडम्बना यह है कि जिस अनाज से पेट भरता है उसके पैदा करने वाले को भी सम्मान नसीब नहीं है। प्रत्येक कार्य जब तक सम्मान की नजर से नहीं देखा जाएगा तब तक बराबरी के प्रयासों का सफल होना संदिग्ध है।

एक महत्वपूर्ण बात, सरकारी विभाग में चपरासी और भृत्य आदि का होना भी एक तरह से सरकार प्रायोजित विज्ञापन है और यह ऊंच–नीच, भेद–भाव का संदेश देना ही होता है। वहां से लोग सीखते हैं कि झाड़ू मारना, पानी पिलाना, पानी भरना आदि छोटे काम हैं।

आधुनिकीकरण और शहरीकरण, छूआछूत की समस्या को लगभग खत्म करने की कोशिश में लगे हैं। समय की कमी और व्यस्तता ने ऐसे सवाल पूछने बंद कर दिये हैं। उन्हें स्वरोजगार के रास्ते दिखाये हैं। अन्य तरह के कामकाज करने की प्रेरणा मिली है। आगे बढ़ने की सोच जागी है। हीनभावना से उबरें हैं। उन लोगों में सफाई से रहने, साफ–सुथरे कपड़े पहनने की सोच आ चुकी है। शिक्षित होना वास्तव में उनके लिए वरदान की तरह है। आरक्षण की सहूलियत के चलते नौकरी पा चुके लोगों का जीवन स्तर ऊंचा उठ चुका है।

पर विडम्बना एक ही है कि ऐसे लोग अपने समाज के लिए कुछ कर नहीं रहे हैं। यहां यह कहना कि कर नहीं रहे हैं थोड़ा गलत लगता है कोई भी अपने समाज के प्रति जवाबदार नहीं है तो हम दलित समाज से क्यों ऐसी अपेक्षा रखें ? परन्तु अन्य समाज को जरूरत भी तो नहीं है। अभी होता यह है कि संपन्न दलित लोग अपने समाज के अन्य लोगों से दूर रहने की कोशिश करते हैं जिससे उनकी इज्जत बनी रहे। लोग उनके रूतबे, पैसे से घुले–मिले रहें।

अपने देश की परिस्थितियां ऐसी हैं कि हर जगह हर समाज के लोग रहते हैं। हम यह नहीं कर सकते कि मात्र उन्हें विद्रोह का झण्डा पकड़वाकर मुख्य धारा से अलग कर दें। भूख का गणित ही पहले पहल काम करता है। इस सवाल का हल प्रत्येक समाज के लिए एक सा होता है बल्कि उन्हें मुख्य धारा लाने का सार्थक प्रयास करें। उनकी सोच को बदलना, रहनसहन के तरीके बदलना, खानपान को बदलना, रीति–रिवाज को बदलना और साथ ही शिक्षा की अलख जगाना, उनके बीच लगातार रहकर किये जाने वाले प्रयास हैं। रीति–रिवाज को बदलना इसलिए आवश्यक है क्योंकि सदियों से विषम परिस्थितियों में रहते हुए अपनी उस परिस्थितियों को रीति–रिवाजों में बदल दिया, उन्हें ही सच्चाई मान बैठे हैं। क्या उन्हें बदलने की जरूरत नहीं है? हमारे न चाहते हुए भी जिन्दगी ऐसी है, या हमारा जन्म ही इसीलिए हुआ है, वो बड़े हैं हम छोटे हैं आदि सोच बदलने की जरूरत है। यही सोच दूसरी ओर भी बदलना आवश्यक है। दूसरी तरफ के लोग इस सोच को भगवान की वाणी, पूर्व जन्म का फल बताकर सही सिद्ध करेंगे क्योंकि ऐसा होने से उनकी जय बोलने वाला, उनकी बात मानने वाला, उनकी सेवा करने वाला गुलाम तैयार रहता है। वह सोच न बदल पाये, तरह–तरह से चाल चलेगा। इसके लिए एकजुट होना जरूरी है।

दुनिया की एक सच्चाई है कि किसी न किसी को अनाज उगाना ही है तब ही पेट भरेगा। वैसे ही सफाई संबंधी कार्य भी पैदा होंगे उसे भी कोई न कोई व्यक्ति करेगा ही। ये अलग बात है कि इस कार्य के लिए जाति विशेष पर जोर बिल्कुल भी नहीं होना चाहिए। जीवन में ऐसे कार्य होंगे ही, इस कार्य को मान्यता मिलनी चाहिए, हेय दृष्टि से नहीं देखना चाहिए। इस काम में मिलने वाला वेतन अच्छा खासा और बराबरी का होना चाहिए।

हमारे देश की सरकारी व्यवस्था जो कि गुलामी की प्रतीक है यही सीखाती दिख जाती है। हर मोड़ पर, एक ही आफिस में 5000 से 50 हजार वाला मिल जाता है। इस देश की सोच पैसों के अंतर से ही छोटा–बड़ा आंकने की रही है तो फिर अंतर मिटे ही कैसे ?

चपरासी का काम ही क्या रहता है ? झाड़ू मारने वाले को साहब जितनी तनखा दोगे तो काम करेगा ? बाबू करता ही क्या है, पूरे फैसले तो साहब लेते हैं।

जब बाबू कुछ करता ही नहीं, चपरासी करता क्या है, तो फिर उनकी भर्ती ही क्यों की जाती है। एक साहब की जगह तीन साहब रखो पर वे सारे काम खुद करें। एक व्यक्ति का निर्णय होगा आफिस में, तो वही जवाबदार भी होगा। कामचोरी भी हटेगी। सारे आफिसों में चतुर्थश्रेणी, तृतीयश्रेणी के कर्मचारी दलित या आदिवासी समाज के ही नजर आते हैं। क्या यह एक सबक नहीं इस समाज के लिए? यदि यहां भूला भटका कोई दूसरे समाज का व्यक्ति मिल भी जाये तो वह बाबू, टाइपिस्ट आदि पदों पर जुगाड़ से कब्जा जमा लेता है।

आरक्षण, सस्ता चावल, जल्दी प्रमोशन, समाज को भटकाने के त्वरित उपाय हैं। यह जरूर हुआ है कि दलित समाज का थोड़ा सा हिस्सा सक्षम हो गया है और अपने आप को मुख्य धारा में शामिल भी कर लिया है। इससे समाज के समझदार हिस्से को फायदा हो जाता है तो वह अपने समाज के दूसरे हिस्से से ही सवर्णीय घृणा पाल लेता है। ऐसे उपाय समाज तोड़ने के हैं न कि आगे बढ़ाने के। दलित समाज की आबादी और परिस्थिति के अनुसार कितने प्रतिशत को फायदा हुआ होगा, स्वयं निर्णय करें। वर्तमान उपायों की कमियां निकालना तो आसान है परन्तु नवीन उपाय न सोचना थूक उड़ाना होगा। नवीन उपाय या सुधार ये हो सकते हैं–

1 अनिवार्य शिक्षा सभी के लिए।

2 शिक्षा मात्र सरकारी स्कूलों में दी जाये।

3 शुरू से आखिर तक मुफ्त शिक्षा हो।

4 शिक्षा के विषयों को नये सिरे से सोचा जाये, आश्रम शैली की शिक्षा हो जिसमें हुनर भी सिखाया जाय।

5 भारतीय जीवन शैली के अनुरूप शिक्षा हो क्योंकि 99 प्रतिशत लोगों को तो भारत में ही रहना है।

6 सरकार यानि कार्यपालिका और राज व्यवस्था जिससे हर व्यक्ति का पाला पड़ता है उसे चपरासीवाद, बाबूवाद से मुक्त किया।

गांव या शहर में कूड़ाघर होने ही नहीं चाहिए। सार्वजनिक स्थान पर कूड़ा फेंकने की व्यवस्था ही नहीं होगी तो लोग अपने घर में जमा रखेगें या फिर कचरा गाड़ी का इंतजार करेंगे।

दलितों का जीवन स्तर सुधारना वर्तमान में मात्र सरकारी सिस्टम से ही संभव है। अभी तो सरकारी ऑफिस में बड़े अधिकारी का बाथरूम भी अलग हो गया है, उसका केबिन अलग है उसमें एसी लगा होता है। वह स्वयं को राजा समझता है। उसके लिए अलग से गाड़ी है। सरकारी घर भी उसे बड़ा मिलता है। क्या समाजिक भेदभाव से बड़ा ये सरकारी भेदभाव नहीं है ? ऐसी जीवन शैली देखकर लोग अपने जीवन भी ऐसा ही नहीं अपनाते हैं ? सरकारी ऑफिस में सभी अपने हिसाब से काम करते हैं तो फिर सुविधा का स्तर अलग–अलग क्यों ? ये सरकारी छुआछूत सबसे ज्यादा खतरनाक है क्योंकि हर कोई वहीं से नवाबी सीखते हैं।

दलित उत्थान पर दलितों को विद्रोह झण्डा पकड़वा देना कोई समझदारी नहीं होगी। बल्कि उनके समाज को आगे आकर अपने लोगों के लिए अन्य व्यवसायों की जानकारी सीखाने के सेन्टर खोलने होंगे। मात्र अपना उत्थान हो जाने पर आंख बंद कर के खुश होने का वक्त अभी नहीं आया है।

पत्रिका मिली

निचोड़
सम्पादक–जय प्रकाश झा
मूल्य–15 रूपये
पता–05–प्रियदर्शनी स्टेडियम,
जगदलपुर–494001 छ.ग.

अविराम साहित्यिकी
सम्पादक–डॉ.उमेश महादोषी
मूल्य–25 रूपये
पता–121इन्द्रापुरम, बीडीए
कालोनी के पास, बदायूं रोड,
बरेली उ.प्र.
संपर्क–09458929004

हिन्दी चेतना
सम्पादक–सुधा ओम ढींगरा
मूल्य–50 रूपये
पता–पंकज सुबीर
पी.सी.लैब, सम्राट काम्पलेक्स
बेसमेंट, बस स्टैण्ड के सामने
सीहोर–466001
संपर्क–09977855399

उपन्यास सम्राट मुंशी प्रेमचंद जी

रायगढ़ : कुबेर की नगरी कहे जाने वाली धर्म नगरी खरसिया में महान कथाकार साहित्यकार मुंशी प्रेमचंद की 135वीं जयंती के उपलक्ष्य पर नव सृजन कला एवं साहित्य मंच के तत्वधान में उपन्यास सम्राट मुंशी प्रेमचंद जी के व्यक्तित्व व कृतित्व पर एक परिचर्चा व सरस काव्य गोष्ठी का आयोजन सेठ दीनानाथ आवासीय परिसर गोविंद नगर खरसिया में किया गया। इस कार्यक्रम में वरिष्ठ साहित्यारों ने जहां उपन्यास सम्राट मुंशी प्रेमचंद जी के व्यक्तित्व व कृतित्व अपने विचार रखें वहीं वरिष्ठ युवा व नवोदित कवियों ने अपनी रचनायें प्रस्तुत की। इस समारोह के मुख्य अतिथि छत्तीसगढ़ी राजभाषा आयोग छ.ग. शासन द्वारा सम्मानित श्री कमल कुमार बहिदार विशिष्ट अतिथि साहित्य चेतना मंच रायगढ़ के सचिव अंजनी कुमार अंकुर, त्रिलोचन राठौर, नव सृजन कला एवं साहित्य मंच के वरिष्ठ कवि विनोदचंद राठौर प्राचार्य प्यारे लाल कंवर, प्रो. रमेश टंडन कार्यक्रम के अध्यक्ष वरिष्ठ कवि गुरूचरण सिंह छाबड़ा मंच पर उपस्थित थे। कार्यक्रम की शुरूआत प्रेमचंद जी छायाचित्र पर दीप प्रज्जवलित, पुष्पांजली अर्पित शुभारंभ किया गया। इस कार्यक्रम के मुख्य अतिथि अध्यक्ष व विशिष्ट अतिथियों का स्वागत मंच के सदस्यों द्वारा पुष्पाहार से किया गया तत्पश्चात् श्रीमती सुभद्रा रानी राठौर के द्वारा सुमधुर कंठों से मां सरस्वती की वंदन की गई तत्पश्चात् स्वागत गीत प्रस्तुत की गई। इस अवसर पर युवा कवि मंच के संचालक डिग्रीलाल जगत निर्भिक ने मुंशी प्रेमचंद जी के जीवन परिचय पर व्याख्या करते हुये कहा लाखों करोड़ों पाठकों के दिल पर राज करने वाले महान कथा साहित्यकार मुंशी प्रेमचंद आज हमारे बीच में नहीं हैं। मगर अपने कथा साहित्य में पात्रों के बीच बोलते नजर आते हैं। वास्तव में अपने उपन्यासों और कहानियों से वे अमर हो गये तत्पश्चात् मंच के सह संयोजिका श्रीमती किरण शर्मा ने भी उपन्यास सम्राट मुंशी प्रेमचंद जयंती के अवसर पर उनके जीवन परिचय पर चर्चा की और उन्होंने कहा मुंशी प्रेमचंद ने अनेक अविस्मरणीय कहानियां लिखी हैं। इन कहानियों में देश समाज और ग्राम जीवन के अनगिनत रंग अपनी भरपूर छटा बिखेरे हुए हैं। हिन्दी साहित्य के उद्भव व विकास को संक्षिप्त रूप से वे जन चेतना माटी पुत्र प्रेमचंद जी द्वारा सर्वप्रथम लिखा गया उपन्यास लेखन शैली, पात्र, संवाद कथाशैली व कथोकथन के ऊपर कहा गया साथ ही युवाओं को अहवान किया गया। समसामयिक घटना कुरीतियों कन्या भ्रूण हत्या, बालविवाह, दहेजप्रथा, बढ़ती आबादी, सिमटती जमीन पर लिखे कलम के सिपाही बनकर अपना कलम आंदोलन चलाए। मलाला का उदाहरण देकर शिक्षा की धारा में बढ़ने को कहा। इस अवसर पर रायगढ़ से पधारे साहित्य चेतना मंच के अध्यक्ष श्री कमल बहिदार ने भी उपन्यास सम्राट मुंशी प्रेमचंद जी को याद करते हुए कहा मुंशी प्रेमचंद सशक्त रचनाकार थे। हिन्दी कथा साहित्य को गौरव प्रदान करने उसे अन्तर्राष्ट्रीय कथा साहित्य के समकक्ष लाने का श्रेय स्व. मुंशी प्रेमचंद को है। प्रेमचंद के उपन्यासों में लोक के व्यापक चित्र तथा सामाजिक समस्याओं के गहन विश्लेषण को देख कर कहा गया है कि प्रेमचंद के उपन्यास भारतीय जनजीवन के मुह बोलते चित्र हैं। प्रेमचंद ने एक दर्जन सशक्त उपन्यास और लगभग तीन सौ कहानियां लिखकर हिन्दी साहित्य को समृद्ध किया ये कहानियां मानव जीवन के विभिन्न पहलुओं का बड़ा यथार्थ तथा सहज चित्रण प्रस्तुत करता है। इस अवसर पर सशक्त रचनाकार अंजनी कुमार अंकुर ने हिन्दी कहानी के पितामह मुंशी प्रेमचंद जी को याद करते हुए उनके जीवन दर्शन पर व्याख्या करते हुए कहा– मां भारती के इस आराधक का जन्म वाराणसी शहर से चार मील दूर ग्राम लमही में सन् 1880 ई. में हुआ। घर की आर्थिक स्थिति अच्छी नहीं थी इसलिए उनका बचपन संकटों में बीता उनका जीवन शुरू से आखरी तक अभाव और संघर्षमय था । प्रेमचंद आदर्शोमुखी यथार्थवादी साहित्यकार थे। उन्होंने समाज के सामने एक ऐसा आदर्श प्रस्तुत किए जिसके सहारे लोग अपने चरित्रों को ऊंचा उठा सकें। इस अवसर पर हरप्रसाद ढ़ेढ़े, मोती लाल राठौर, लकेश्वर धीरहे, परेशान चाम्पा, मनमोहन सिंह ठाकुर, जयन्तु राम मनहरे, सत्यनारायण बरेठ, मनिहार सिंह निराला, कटेकोनी जांजगीर–चाम्पा, प्रो. रमेश टण्डन, प्यारेलाल कवंर प्राचार्य, विनोदचंद सिंह राठौर, त्रिलोचन राठौर, भोज कुमार राठौर, गुरूचरण सिह छाबड़ा, लखन लाल राठौर, श्रीमती देवकुमारी बघेल ''आस'', डिग्रीलाल जगत, गुलाब सिंह कवंर, कमल बहिदार, अंजनी कुमार अंकुर, श्रीमती किरण शर्मा ने भी अपनी–अपनी रचना का पाठ किया । ●

पहला संदेशः क्षेत्र का संदेश

बस्तर क्षेत्र की उर्वर धरती ने न जाने कितने ही मानस पुत्र दिये हैं उनमें दिनांक 12 जुलाई 15 को नाम और जुड़ गया। सनत जैन के कहानी संग्रह 'पहला संदेश' के साथ ही उन्होंने अपनी कहानी लेखन प्रतिभा को साबित कर दिया। क्षेत्र के नामी साहित्यकार शानी और कृष्ण शुक्ल के बाद उन्होंने अपने लगातार लेखन से कहानी से जोरदार उपस्थिति प्रस्तुत की। 'बस्तर मेरा देश' के बाद यह उनका दूसरा कहानी संग्रह है जिसका विमोचन साल भर पूर्व हुआ था।

बस्तर क्षेत्र के आदिवासियों की समस्याओं और अन्य विषयों को चित्रित करती कहानियां यहां के वर्तमान का सच्चा ताना–बाना हैं। कला संस्था आकृति में शरदचंद्र गौड़ ने कुशल मंच संचालन के दौरान अपनी समीक्षा में बताया कि सनत जैन अपने ठेकेदारी के पेशे के दौरान जो दुनिया देखी उसे ही पन्नों पर उतार दिया। श्री मदन आचार्य जी ने आश्चर्य प्रगट करते हुआ कहा कि सनत कैसे अपने काम के साथ लेखन का सामंजस्य कर पाते हैं। डॉ. योगेन्द्र सिंह राठौर ने अपने समीक्षात्मक उद्बोधन में 'पहला संदेश' की लेखन शैली पर प्रकाश डाला और भविष्य की शुभकानाएं प्रेषित की। संग्रह का कवर पेज श्री नरसिंह महांती द्वारा वाटर कलर से डिजाइन किया गया है जिसे सभा में उपस्थित सभी लोगों ने सराहा। श्री जे पी दानी, श्री ऋषि शर्मा ऋषि, डॉ कौशलेन्द्र, श्री बी. एल.विश्वकर्मा श्री शशांक शेण्डे, डॉ चंद्रेश शर्मा, श्री नरेन्द्र पाढ़ी, श्री नरेन्द्र यादव, श्री विमल तिवारी, श्री वसंत चव्हाण, श्री जैनेन्द्रसिंह, श्री भरत गंगादित्य, श्रीमती सरला जैन, श्रीमती ममता जैन के साथ बीजापुर से पधारी पूनम विश्वकर्मा भी थीं। सभा में उपस्थित समस्त जनों ने अपना उद्बोधन दिया।

विमोचन के बाद पावस काव्य गोष्ठी का भी आयोजन था जिसमें भरत गंगादित्य एवं नरसिंह पाढ़ी ने हल्बी बोली में सुन्दर गीत एवं कविता का पाठ किया। ऋषि शर्मा ऋषि ने अपनी ग़ज़लों से मन मोह लिया। डॉ. चंद्रेश शर्मा एवं श्री नरेन्द्र यादव ने छत्तीसगढ़ी में गीत प्रस्तुत किया । श्री शशांक शेण्डे ने अपनी काव्य रचना से सबका मन मोह लिया। पूनम विश्वकर्मा ने भी अपनी कविताएं सुनाईं। ●

बस्तर पाति–साहित्य सेवा

''बस्तर पाति'' मात्र पत्रिका प्रकाशन ही नहीं है बल्कि इस क्षेत्र का साहित्यिक दस्तावेज है। हम और आप मिलकर तैयार करेंगे एक नई पीढ़ी; जो इस क्षेत्र का साहित्यिक भविष्य बनेगी। मिलजुलकर किया प्रयास सफल होगा ऐसा विश्वास है। हमें करना यह है कि लोगों के बीच जायें उनके बीच साहित्यिक रूचि रखने वाले को पहचाने और फिर लगातार संपर्क से उन्हें लिखने को प्रेरित करें। उनके लिखे को प्रकाशित करना ***''बस्तर पाति''*** का वादा है। रचनाशील समाज रचनात्मक सोच से ही बनता हैं, ये सच लोगों तक पहुंचाने के अलावा रचनाशील बनाना भी हमारा ही कर्तव्य है। लोक संस्कृति के अनछुए पहलूओं के अलावा जाने पहचाने हिस्से भी समाज के सम्मुख आने ही चाहिये। आज की आपाधापी वाली जिन्दगी में मानव बने रहने के लिए मिट्टी से जुड़ाव आवश्यक है। खेत–किसान, तीज–त्यौहार, गीत–नाटक, कला–संगीत, हवा–पानी आदि के अलावा घर–द्वार, माता–पिता से निस्वार्थ जुड़ाव की जरूरत को जानते बूझते अनदेखा करना, अपने पांवों कुल्हाड़ी मारना है, इसलिए हमारी सोच के साथ जीवन में भी साहित्य का उतरना नितांत आवश्यक है। साहित्य मात्र कुछ ही पढ़े–लिखे लोगों की बपौती नहीं है बल्कि लोक की सम्पदा है इसलिए सभी गरीब–अमीर, पढ़े–लिखे लोगों को जोड़ने की बात है। कला की प्रत्येक विधा हमें मानव जीवन सहेजने की शिक्षा देती है। हां, ये अलग बात है कि हम उसे समझना चाहते हैं या फिर समझाना नहीं चाहते हैं। लोक जीवन, लोक संस्कृति और लोक साहित्य, इन सभी में एक ही विषय समाहित है, एक ही आत्मा विराजमान है, इसलिए किसी एक पर बात करना ही हमें मिट्टी से जोड़ देता है, हमें मानव बने रहने पर मजबूर कर देता है।

मेरा निवेदन है कि हम अपने क्षेत्र के लोगों को ***''बस्तर पाति''*** से जोड़ें और उन्हें अपनी रचनात्मक भूमिका निभाने के लिए प्रोत्साहित करें। ***''बस्तर पाति''*** के पंचवर्षीय सदस्य बनकर इस साहित्यिक आंदोलन के सक्रिय सहयोगी बनें। ***''बस्तर पाति''*** को मजबूत बनाने के लिए आर्थिक आधार का मजबूत होना आवश्यक है। इस छोटी–सी किरण को सूरज बनना है और आप से ही संभव है, इसलिए रचनात्मक सहयोग के साथ ही साथ आर्थिक सहयोग प्रदान करते हुए आज ही पंचवर्षीय सदस्य बनें। अपने मित्रों को जन्मदिन और सालगिरह पर उपहार स्वरूप पंचवर्षीय सदस्यता दें। याद रखें, ज्ञान से बड़ा उपहार हो ही नहीं सकता है। हमारा पता है–

सदस्यता फार्म

मैं ***''बस्तर पाति''*** हिन्दी त्रैमासिक का पंचवर्षीय सदस्य बनना चाहता हूं। कृपया मुझे सदस्य बनायें। मेरा नाम व पता निम्नानुसार है–

नाम–.....

पता–.....

.....

.....

.....

शिक्षा–.....**अन्य जानकारी**.....

.....

मोबाइल नं.–.....**ईमेल**.....

500/– (रूपये पांच सौ) नगद/ मनीआर्डर / अकाउंट नंबर 10456297588 एसबीआई जगदलपुर (आईएफएस कोड 00392) द्वारा भेज रहा हूं।

दिनांक–

हस्ताक्षर

प्रति,

''बस्तर पाति''
साहित्य एवं कला समाज
सन्मति गली, सन्मति इलेक्ट्रीकल्स, दुर्गा चौक के पास, जगदलपुर जिला बस्तर छ.ग. पिन–494001
मो.–09425507942 ईमेल–paati.bastar@gmail.com

बस्तर पाति के लिए विज्ञापन दर

पत्रिका में स्थान (मल्टीकलर)	***दर प्रति अंक***
पिछला पेज	
पूरा	***10000/–***
आधा	***5000/–***
पिछले से पहला	
पूरा	***5000/–***
आधा	***3000/–***
मध्य के दो पेज पूरे (ब्लैक एण्ड व्हाइट)	***20000/–***
भीतर के पेज में कहीं भी	
पूरा	***2000/–***
आधा	***1000/–***
एक चौथाई	***500/–***
सभी पेज में नीचे एक लाइन की विज्ञापन पट्टी	***10000/–***

ध्यान रखिए, आपका सहयोग साहित्य एवं हिन्दी के प्रसार में उपयोग होगा।

कविता कैसे बदले तेरा रूप

कविता का रूप कैसे बदलता है देखें जरा। नये रचनाकार ने लिखा था, नवीन प्रयास था इसलिए कसौटी पर खरा नहीं उतरा। उसी कविता को कैसे कसौटी पर खरा उतारें–

चींटी

अपनी सखी सहेलियों के साथ
चल पड़ी ढोने को सामान
न जाने कब से
वह ढो रही है सामान
अनुशासन के नियमों से बंधी
दीवार की झिर्रियां,
पत्थर के नीचे की पोली जमीन
या फिर
लकड़ियों का पोलापन
सभी जगह,
कहीं भी बना लेती है गोदाम
जहां वह रहती है
वो गोदाम नहीं
होता है घर।
लगातार की मेहनत
उसका लालच नहीं
कर्म के प्रति है लगन

यही कविता कुछ अन्य पंक्तियां जोड़ने पर देखें कैसे रूप बदलकर रोमांचित करती है–

अपनी सखी सहेलियों के साथ
चल पड़ी ढोने को सामान
न जाने कब से
वह ढो रही है सामान
अनुशासन के नियमों से बंधी
दीवार की झिर्रियां,
पत्थर के नीचे की पोली जमीन
या फिर
लकड़ियों का पोलापन
सभी जगह,
कहीं भी बना लेती है गोदाम
जहां वह रहती है
वो गोदाम नहीं
होता है घर।
लगातार की मेहनत
उसका लालच नहीं
कर्म के प्रति है लगन
वही छोटा जीव सिखाता है
हाथी से भी जीत जाना!

फेसबुक वॉल से

चमत्कार

श्री अशोक कुमार की वॉल से

चमत्कार वह नहीं था
कि कोई कहता था सिद्धपुरुष
कि कोई फल का नाम लो
और वह बता देगा

चमत्कार वह भी नहीं था
कि दिव्य शक्ति सम्पन्न सन्त
पूछता था कहाँ से आये हो पहले
फिर उसे भुट्टे की गंध आती थी

चमत्कार वह भी नहीं
कि साध्वी जिसमें
वशीकरण की सारी हदें पार कर जाती थी

चमत्कार इस युग का यही बड़ा था
कि सघन होते समय
और संघनित होती समस्याओं के साथ
बिखर गया था हौसला
और तुम अपनी झोली वहीं फैला रहे थे
जहाँ तुम्हारे ही इंतजार में
पहले से ही खुली हुई थीं हथेलियाँ!

प्यार के बदले यहाँ प्यार मिले
तकरार के बदले यहाँ तकरार मिले,
जिंदगी है किसी बीज की तरह 'राकेश'
बोओगे एक पर फल यहाँ हजार मिले।

डट कर संघर्ष करो जमाने में
एक मजा भी है जंग हार जाने में,
हर जंग जीतना जरुरी नही 'राकेश'
एक खुशी भी है लड़कर टूट जाने में।,

श्री राकेश ऋषभ की वॉल से

सत्य की एक किरन मिले तो
इच्छाओं की कोई कली खिले तो,
महक उठेगा जीवन मेरा भी
मेरे टूटे दिल को कोई सिले तो।

बस्तर पाति को मूर्तरूप देने वाले सहयोगी

संस्थापक सदस्यः–

श्री एम.एन.सिन्हा, दल्ली राजहरा छ.ग.
श्री आशीष राय, जगदलपुर, छ.ग.
श्री अमित नामदेव, रायपुर, छ.ग.
श्री गौतम बोथरा, रायपुर, छ.ग.
श्री कमलेश दिल्लीवार, रायपुर, छ.ग.
श्री सुनील अग्रवाल, कोरबा, छ.ग.
श्री संजय जैन, भाटापारा, छ.ग.
श्रीमती ममता जैन, जगदलपुर, छ.ग.
श्री सनत जैन, जगदलपुर, छ.ग.

परम सहयोगीः–

श्रीमती उषा अग्रवाल, नागपुर
श्री शशांक श्रीधर, जगदलपुर
श्री महेन्द्र जैन, कोण्डागांव
श्री आनंद जी. सिंह, दंतेवाड़ा
श्री योगेन्द्र मोतीवाला, जगदलपुर
श्री जगदीश मोगरे, जगदलपुर
श्री विमल तिवारी, जगदलपुर
श्री उमेश पानीग्राही, जगदलपुर

सदस्यः–श्रीमती जयश्री जैन, श्रीमती रचना जैन, श्री शमीम बहार, श्री मनीष अग्रवाल जगदलपुर, श्री श्याम नारायण श्रीवास्तव रायगढ़, श्रीमती अशलेषा झा, श्री महेश बघेल जगदलपुर, श्री नलिन श्रीवास्तव राजनादगांव, श्री ऋषि शर्मा 'ऋषि', श्री बीरेन्द्र कुमार मौर्य जगदलपुर, श्री टी आर साहू दुर्ग, श्रीमती गुप्तेश्वरी पाण्डे जगदलपुर, श्रीमती बरखा भाटिया कोण्डागांव, श्री निर्मल आनंद कोमा, राजिम, श्री कांति अरोरा बिलासपुर, श्री राजेन्द्र जैन भिलाई, श्री मिश्रा जी, श्री नूर जगदलपुरी जगदलपुर, श्री हरेन्द्र यादव कोण्डागांव, श्री महेन्द्र यदु कोण्डागांव, श्री एस.पी.विश्वकर्मा कोण्डागांव, सुश्री उर्मिला आचार्य जगदलपुर, श्रीमती प्रभाती मिंज बिलासपुर, श्रीमती सोनिका कवि, श्री जितेन्द्र भदोरिया जगदलपुर, श्री आर.बी. तिवारी महासमुंद, मे. होटल रेनबो जगदलपुर, श्री संजय मिश्रा रायपुर, श्री इश्तियाक मीर जगदलपुर, सोनिया कुशवाह, श्रीमती पूर्णिमा सरोज रूपाली सेठिया, श्री राजेश श्रीवास्तव, श्री महेन्द्र सिंह ठाकुर, श्री चंद्रशेखर कच्छ, में.पदमावती किराना स्टोर्स श्री दिलिप देव, तृप्ति परिडा, श्री धरमचंद्र शर्मा, श्री हेमंत बघेल जगदलपुर श्री जी.एस. वरखड़े जबलपुर, लक्ष्मी कुडीकल जगदलपुर, श्री अनिल कुमार जयसवाल भिलाई, श्री वीरभान साहू रायपुर, प्रीतम कौर, श्री मनीष महान्ती, श्री प्रणव बनर्जी, शेफालीबाला पीटर, श्री यशवर्धन यशोदा, श्री शरदचंद्र गौड़, श्री सुरेश विश्वकर्मा श्रीमती शांती तिवारी, श्री विनित अग्रवाल, श्री एन.आर. नायडू, श्रीमती मोहिनी ठाकुर, श्री जयचंद जैन, श्री कुमार प्रवीण सूर्यवंशी, श्री भरत गंगादित्य, श्री मिनेष कुमार जगदलपुर, श्री शिव शंकर कुटारे नाराणपुर, सुशील कुमार दत्ता जगदलपुर, श्री अखिल रायजादा बिलासपुर, श्रीमती दंतेश्वरी राव कोण्डागांव, श्री पी. विश्वनाथ जगदलपुर, श्रीमती रजनी साहू मुबई, श्रीमती वंदना सहाय नागपुर, श्रीमती माधुरी राउलकर नागपुर, श्रीमती रीमा चढ्ढा नागपुर, श्री अरविन्द अवस्थी मिर्जापुर, श्री देव भंडारी दार्जीलिंग, श्री जगदीशचंद्र शर्मा घोड़ाखाल नैनीताल, श्रीमती विभा रश्मि जयपुर, नुपूर शर्मा भोपाल, मो.जिलानी चंद्रपुर, डॉ.अशफॉक अहमद नागपुर, श्री रमेश यादव मुंबई श्रीमती सुमन शेखर ठाकुरद्वारा, पालमपुर हि.प्र., श्रीमती प्रीति प्रवीण खरे भोपाल, डॉ. सूरज प्रकाश अष्ठाना भोपाल, श्री डी.पी.सिंह रायपुर, प्राचार्य दंतेश्वरी महाविद्यालय दंतेवाडा, रोशन वर्मा कांकेर, श्री मनोज गुप्ता रायपुर, श्रीमती कमलेश चौरसिया नागपुर, डॉ. कौशलेन्द्र जगदलपुर, पूनम विश्वकर्मा बीजापुर, श्री अमृत कुमार पोर्ते, जगदलपुर, श्री अविनाश ब्यौहार जबलपुर, श्री धनेश यादव, नारायणपुर, श्री कृष्णचंद्र महादेविया, श्री केशरीलाल वर्मा, बचेली संदीप सेठिया तोकापाल, श्रीमती हितप्रीता ठाकुर, परचनपाल, गोपाल पोयाम, पंझरीपानी, श्रीमती खुदेजा खान, जगदलपुर

भीतर के पन्नों के रेखाचित्र– श्रीमती कमलेश चौरसिया

नागपुर निवासी श्रीमती कमलेश चौरसिया जी क्रिकेट के आलराउण्डर की तरह कविता, कहानी, हाइकु, आलेख, रेखाचित्र आदि समस्त विधाओं में निपुण है। इनके बनाए रेखाचित्र कई पत्र–पत्रिकाओं में अपनी सार्थक उपस्थिति दर्ज करवा चुके हैं। इनके रेखाचित्रों में चित्रों के साथ–साथ गूढ़ संदेश भी होता है। उनको साधुवाद जो उन्होंने पत्रिका के मूड के अनुरूप रेखाचित्र तैयार किये। उनके रेखाचित्र सटीक और संदर्भित हैं।

बस्तर पाति का कवर पेज एवं भीतर के चित्र– श्री नरसिंह महान्ती

श्री नरसिंह महान्ती बस्तर क्षेत्र के वो कलाकार हैं जो नाम से दूर चुपचाप अपना सृजन कर रहे हैं। इनका सृजन बस्तर के जनजीवन के साथ ही साथ बस्तर का प्राकृतिक सौन्दर्य भी समेटे हुये है। अपनी तुलिका से कुछ ही पलों में सौन्दर्य गढ़ लेते हैं। किसी भी दृश्य की बारीक से बारीक विशेषता इनकी दृष्टि से बची नहीं रह पाती है। मुख्यतः वाटर कलर के उपयोग से जीवंत दृश्य उकेरने वाले महान्तीजी पानी के दृश्य यूं उभारते हैं कि समझना मुश्किल हो जाता है कि पानी का चित्र है अथवा पानी ही है। पेन्सिल के प्रयोग से ब्लैक एण्ड व्हाइट रेखाओं द्वारा बनाये चित्रों की छटा देखते ही बनती है। इनके बनाये चित्रों की प्रदर्शनी 'आकृति' में लग चुकी है और ***बस्तर पाति*** परिवार पुनः प्रदर्शनी लगाने पर विचार कर रहा है जिससे कि जल्द ही शहर के लोगों को उनका छिपा खजाना देखने को मिले। इनके बनाये चित्र स्थानीय पत्रिकाओं एवं अखबारों में लगातार आते रहते हैं। कई साहित्यिक संग्रहों के मुखपृष्ठ आपके बनाये चित्रों से शोभित हैं।

बैक कवर के फोटोग्राफर श्री राकेश आर. सिंह

नारायणपुर क्षेत्र के रहवासी श्री राकेश आर. सिंह को मैं फेसबुक के माध्यम से जान पाया हूं। वे लगातार अपनी फोटोग्राफी में प्रयोग करते रहते हैं। फोटोग्राफी के द्वारा परिवर्तित फोटो से उत्पन्न प्रभाव उनकी वॉल पर निरंतर मिल जाते हैं। उन्हें बस्तर की सांस्कृतिक विरासतों से भरपूर जीवन शैली आकर्षित करती है। उनके कैमरे द्वारा देखा बस्तर का पहनावा, संस्कार और खेत–खलिहान दर्शनीय है। समस्त कलाप्रेमियों एवं पाठकों से निवेदन है कि वे एक बार जरूर उनकी वॉल की सैर करें।